सिद्ध योग

ंरक्षक एवं सम्पादक
नन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

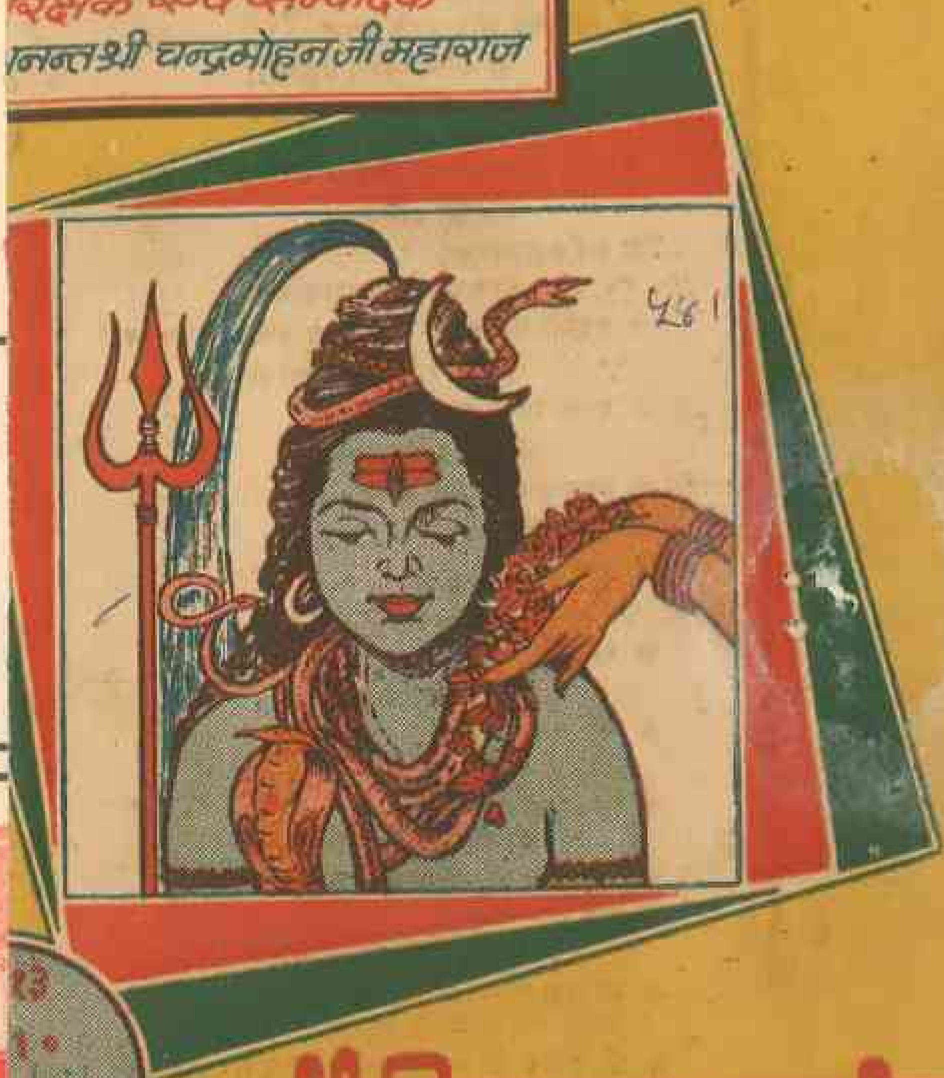

श्री सिद्ध गुफा प्रकाश

सैंवाई, आ

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा, सवाई

इस अंक में—

❀ महादेवो देवः
❀ जीवन और प्रारब्ध (विशेष लेख)
योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज २
❀ योगासन और उनके लाभ
श्री वीरेन्द्रस्वरूप ब्रह्मचारी ४
❀ ऐतिह्य !
श्री राघवेन्द्र तिवारी ६
❀ बौद्ध योगाचार्य बुद्धघोष और उनका विशुद्धि मार्ग
डा० श्री बालमुकंद १०
❀ सर्वभूतहितेरताः
आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा १५
❀ बदलते मौसम की बीमारी से बचाव व इलाज
श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री १८
❀ इच्छा-शक्ति से स्वास्थ्य-लाभ
डा० श्री विजयसिंह २२
❀ पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् २५
❀ सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् २७
❀ दुःखालयं शाश्वतम्
श्री सुरेन्द्रबहादुर एम. ए. २८
❀ श्लोकछन्दपुष्पोपहारम्
श्री द्वारिकाप्रसाद शर्मा ३३
❀ प्रेम एवम् भक्ति
श्री तिरखाराम ३४
❀ निजानुभूतियां
श्री महेन्द्रनारायणसिंह ३७
❀ श्री गुरुदेवजी का लखनऊ में भव्य योग-प्रचार ४०
❀ मयि बुद्धि निवेशय
ब्रह्मचारी श्री दासलाल शर्मा ४४
❀ को नहिं जानत है जग में—
श्री शिवनाथ मेहरोत्रा ४६
❀ श्री गुरुदेव जी का आगामी योग प्रचार कार्यक्रम ४८

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

वार्षिक मूल्य : १५ रुपया

सिद्ध योग

वर्ष १३
अङ्क १०

जनवरी
१९८१

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदं योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

❀ महादेवो देवः ❀

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद्
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥

अर्थात्

महादेव ही मेरे एकमात्र आराध्य देव हैं, गंगा ही एकमात्र नदी है, पर्वतीय कन्दरा ही घर है, दिशायें ही वस्त्र हैं, काल ही मित्र है, किसी के सामने दीन न होना यह एकमात्र व्रत है, कहां तक कहें वट वृक्ष ही दयिता है। तात्पर्य यह कि विरक्त पुरुष की जीवन यात्राके लिए ये ही पदार्थ पर्याप्त हैं। —भर्तृहरि

हमारा विशेष लेख—

जीवन और प्रारब्ध

❀ योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संसार में प्रत्येक प्राणी का जन्म सद्-असद् योनि में उसके अपने प्रारब्ध कर्मों के अनुसार होता है। जन्म-जन्मान्तर के संचित कर्मसमूह में से मृत्यु समय जो कर्म फलोन्मुख होने के लिए आगे आ जाते हैं वे अपने सहयोगी सजातीय पुण्य-अपुण्य कर्मों को लेकर जाति आयु और भोग के रूप में प्राणी की जन्म योनिका निर्माण करते हैं। यही सृष्टि क्रम है, और यही परमेश्वरीय व्यवस्था है। प्राणी के इस वर्तमान जीवन को 'योग दर्शन' में 'दृष्ट जन्म वेदनीयः' कहकर इंगित किया है, और इससे अगले-भावी जीवन को अदृष्ट जन्म वेदनीयः कहकर पुकारा गया है।

'योग दर्शन' के साधन पाद का यह सूत्र इस प्रकार है:—

क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः।

अर्थात् क्लेश अविद्या आदि मूल हैं कर्मों के आशय का जो दृष्ट=वर्तमान और अदृष्ट=आगे आने वाले जीवनों में वेदनीयः यानी भोग्य हैं।

यह चिरन्तन सत्य है कि आत्मा अनंतकाल से शुभ-अशुभ तथा पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म मय कर्मों को करता और उनके फलों को भोगता चला आ रहा है। मानव योनि की उपलब्धि भी आत्माको इसी कर्म-फल-भोग श्रृंखलाके अन्तर्गत ही होती है। जैसाकि हमने ऊपर उल्लेख किया है प्रारब्धानुसार ही भोग भोगने के लिए प्राणी को एक नियत और निर्धारित समय के लिए यह मानव देह प्राप्त होती है। जितने समय में सुखमय अथवा दुखमय भोग भोगे जा सकते हैं उतने ही समय के लिए उसे आयुष्य रूपी पाश से बांध दिया जाता है। भोगों के समाप्त होते ही उसकी यह पाश टूट जाती है और आत्मा पुनः अपने वर्तमान जीवन में किये गये शुभ-अशुभ कर्मों के तथा संचित कर्माशय में तीव्र संवेग के कारण आगे आ जाने वाले कर्मों का फल भोगने के लिए नयी योनि प्राप्त कर लेता है। आत्मा के देह-बन्धन का यह क्रम तब तक चलता ही रहता है जब तक कि वह तपः स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यानी क्रियायोग द्वारा अपने कर्माशय को दग्ध बीज करके समाधि लाभ प्राप्त नहीं कर लेता। जन्म-मरण के इस अनवरत

चलने वाले चक्र से विमुक्त होने का सद्प्रयत्न प्राणी अन्य किसी योनि में नहीं किन्तु इस अमूल्य और सुर दुर्लभ नर-देह को पाकर ही कर सकते हैं। बुद्धि और विवेक की जितनी बहुल राशि प्राणी को मानव जीवन में प्राप्त होती है उतनी अन्य किसी अन्य योनि में जाने पर उसे प्राप्त नहीं हो पाती।

अन्य सभी योनियां भोग योनियां हैं, मानव योनि ही ऐसी योनि है जिसमें उसे भोग भोगने के अतिरिक्त विवेकपूर्वक कर्म करने का सुअवसर भी सुलभ होता है। अतः इस अमूल्य अवसर को प्रमाद में खो देना जीवन को अधोगति की ओर ले जाना ही कहा जा सकता है। आयुष्य अथवा जीवन की नपी तुली घड़ियों को सदाचरण, सत्कार्म, सद्व्यवहार और सन्मार्ग मेंसतत् मोड़ने का जो प्रयास और प्रयत्न करते रहते हैं वे ही अपने अपने सुखद और आनंद मय भविष्य का निर्माण कर पाते हैं। योग-साधना का मार्ग ऐसा ही मार्ग है जिसपर नियमित रूपसे चलकर साधक उस अपार आनंद राशि को सहज ही पा लेता है, जिसे पाकर फिर यहां और कुछ पाना शेष नहीं रहता। यह आनंद राशि ही जगदात्मा भगवान कृष्ण का वह परम धाम है जहां जाकर जीव को जन्म-मरण रूपी चक्र में फिर आना नहीं पड़ता। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते
तद्धाम परं मम्

❀ देवपुरी अयोध्या ❀

वेदों में मानव देह को—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूर अयोध्या

कहकर इंगित किया गया है। देवनगरी यह इसलिए है कि इसमें इन्द्रियरूपी देवता निवास करते हैं आत्मा इन देवताओं का राजा=इन्द्र है। देह में निवास करने वाले इन देवताओं में कभी युद्ध या विवाद नहीं होता इसीलिए इस पुरी का नाम अयोध्या है। सभी एक दूसरे के सहकारी और सहयोगी बनकर आत्मा यानी इन्द्र के आज्ञा पालन में तत्पर रहते हैं। मूलाधार चक्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र चक्र तक इस नगरी में आठ चक्र हैं। जिनसे इस पुरी में सदैव जीवन रस का संचार होता रहता है। ऐसी अनुपम देवपुरी को पाकर-अपने कुकर्मों द्वारा और असद् वृत्तियों के द्वारा राक्षस पुरी बनाने का जो काम करते हैं वे ही आत्मघाती कहलाते हैं।

योगासन और उनके लाभ

❀ ब्रह्मचारी श्री वीरेन्द्रस्वरूप श्री सिद्धगुफा सत्राई

गत वर्ष 'सिद्धयोग' के जून अङ्क में 'ताड़ासन' का परिचय कराया गया था और प्रयास किया गया था कि उसका स्वरूप एव 'ताड़ासन' की उपादेयता पाठक वृन्द समझ लें। योगासनों के वर्गीकरण (अप्रैल ७९ अङ्क) में ताड़ासन के बाद हस्तपादअंगुष्ठासन है अतः अब यहां पर इसी का क्रमानुसार वर्णन किया जाता है।

हस्तपादअंगुष्ठासन

उपादेयता—यह आसन पृष्ठ, कटि, सक्थि एवं भुजाओं में आकुञ्चन पैदा करके उनकी शक्ति को बढ़ाता है, इन अङ्गों की कोशिकाओं की न्यूक्लिअर पावर बढ़ जाती है।

मोटे कूल्हों और नितम्बों तथा मोटी सक्थियों की चर्बी को हटाकर उन्हें सुडौल बनाता है। पृष्ठ भाग की पार्श्विकाओं में होने वाले वातरोग को दूर कर देता है। पिण्डली एवं सक्थियों में स्थैर्यबल बढ़ाता है।

विधि—काया, ग्रीवा एवं सिरको एक सूत्र में स्थिर रखते हुए खड़े हो जाइये उसके बाद एक हाथ (बांये) को कटि पर अंगूठे और तर्जनी के बीच के भाग से जमाकर रखिये। अब उसी ओर के पैर को दूसरे पैर के घुटने तक ऊपर उठा लीजिए। अब आप दूसरे हाथ से उठे हुए पैर का अगूठा पकड़ लीजिये और शरीर को स्थिर रखते हुए एक पैर (दांये) पर खड़े हुए, उठाये हुए पैर के अंगूठे को पकड़े धरातल के समतल में सामने सीधा फैला दीजिये। इसी स्थिति में १० सेकैण्ड रुके रहिये और फिर छोड़ दीजिये। इसी क्रिया को तीन बार कीजिये, पुनः दूसरे पैर और हाथ से इसी क्रिया को कीजिये। यही हस्तपादअंगुष्ठासन कहलाता है।

बन्ध—हस्तपादअंगुष्ठासन करते समय मूलबन्ध एवं उड्डीयानबन्ध लगा रहता है। जिससे प्राणों पर नियन्त्रण करने का प्रथम पाठ आरम्भ हो जाता है।

व्याख्या—जिस समय हम एकाएक पैर को सामने फैलाते हैं उस समय हमारे शरीर में ऐड़ी से लेकर सिर की चोटी तक एक शक्ति की तरंग रीढ़ की हड्डी से होती हुई निरन्तर चलती हुई दिखाई देती है और वह धीरे-धीरे पूरे शरीर में व्याप्त होती चली जाती है। यह शक्ति-तरंग कोशिकाओं के अन्दर घुसकर

उसमें सुप्त पड़े हुए न्यूक्लिअस को जगाती है। इस शक्तितरंग से जागृत न्यूक्लिअस अपना चयापचय का कार्य अपनी पूरी क्षमता के साथ अपनी कोशिका के द्वारा करना आरम्भ कर देता है जिससे शुद्ध रक्त का संचार एवं दूषित रक्त-शोधन के लिए हृदय की ओर चल पड़ता है। कोशिका के स्वस्थ रहने पर, उनके जागृत रहने पर शरीर में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आती। कोशिकाओं के सुप्त रहने पर या मर जाने परही शरीर का ह्रास होना आरम्भ हो जाता है।

पादअंगुष्ठासन से पैर के, कटि के एवं पीठ के वातरोग उनकी कोशिकाओं के जागृत हो जाने से निकल जाते हैं। मलाशयों की कोशिकायें जागृत हो जाती हैं और वह अपना मल विसर्जन कार्य सुचारु रूप से करती हैं जिससे कब्जी नहीं होने पाती।

त्रिकोणासन

इस आसन को करते समय आसनाभ्यासी त्रिभुज की आकृति में खड़ा रहता है, इसलिए इस आसन को त्रिकोणासन कहते हैं।

उपादेयता—इस आसन का सम्यक् प्रकार से किया हुआ अभ्यास ब्रह्मचर्य में सहायक होता है। पैर, कटि एवं पृष्ठ-भाग के वात-रोगों को दूर कर देता है।

विधि—सर्व प्रथम 'समकाय-शिरोग्रीव' की विधि से खड़े हो जाइये फिर दोनों पैरों क बीच में ३ फुट की दूरी रखते हुए खड़े हो जाइये। इसके बाद पेट की वायु बाहर निकालते जाइये, पेट को भीतर सिकोड़ते हुए नाभि के ऊपर हाथ से भी गति की दिशा में हथेली से ऊपर की ओर हल्का धक्का देते जाइये। जब पेट की पूरी वायु निकल जाय तब एक पैर को घुटने पर से मोड़ते हुए उसी ओर झुक जाइये तथा उस ओर के हाथ को उस ओर के पैर के पंजे पर जमा दीजिये एवं दूसरा हाथ सिर के ऊपर से फैले हुए पैर की समसूत्रता में ले आइये। इसी स्थिति में ५ सेकण्ड रुके रहकर इसी क्रिया को दूसरे हाथ और पैर से करिये यही क्रिया ५ बार दुहराइये। यही त्रिकोणासन कहलाता है।

बन्ध—इस आसन के अभ्यास में उड्डीयान बन्ध का ही विशेष अभ्यास महत्वपूर्ण है।

व्याख्या—जिस समय हम अपने हाथ की हथेलियों से नाभिमण्डल को उर्ध्व गति देते हैं तब वीर्यकोष में इकट्ठा हुआ वीर्य प्राणों क साथ मिलकर शरीर में व्याप्त होने लगता है और जब हम त्रिकोणासन की स्थिति में होते हैं उस समय वह वीर्य अपनी व्याप्ति का स्थिरता प्रदान करता है। वीर्य के शरीर में व्यापक हो जाने पर मन में एकाग्रता के क्षण आने लगते हैं। मन की एकाग्रता ही योग की जननी है।

उत्कटासन

उपादेयता—इस आसन के द्वारा सक्थि और पिण्डली की मांसपेशियों पर काफी तनाव पड़ता है जिससे वे रस-रक्त को पर्याप्त ग्रहण एवं विसर्जन कर लेती हैं जिससे शक्तिशाली बन जाती हैं।

पेट के नलों को इसी आसन में स्थित होकर उठाया जाता है और नौली क्रिया की जाती है।

विधि—समसूत्रता में खड़े होकर हाथों को सक्थियों पर जमाकर कटिभाग को धीरे-धीरे इस प्रकार पीछे ले जाते हैं मानो कुर्सी पर बैठने जा रहे हों। सक्थि और पिण्डली आपस में मिलें नहीं इतनी दूरी को रखते हुए कुर्सी की आकृति बना लेते हैं। इसे उत्कटासन कहते हैं।

व्यख्या—इस आसन से कटि, घुटना, पिण्डली एवं गुल्फों की मांसपेशियों पर गहरा तनाव पड़ता है जिससे वहां के दूषित मल निकल जाते हैं और शुद्ध रस-रक्त का नवीन संचार हो जाता है।

बन्ध—इस आसन का आधार उड्डीयान बन्ध है, उड्डीयान बन्ध के ही आधार पर यह आसन स्थिर रहता है।

पाद हस्तासन

यह आसन अभ्यास क्रम से तीन प्रकार से किया जाता है वह विधि में बतलायेंगे।

उपादेयता—इस आसन के अभ्यास से पृष्ठ भाग के सभी स्नायु-मण्डल में आकुञ्चन या प्रतिकुञ्चन पैदा होता है जिससे स्नायु-मण्डल से मल निकल जाते हैं और नया रक्त उनमें भर जाता है जिससे वह स्वस्थ रहते हैं।

पाचन क्रिया ठीक रहती है, भूख भी खूब लगने लगती है, कब्जी दूर होती है। पेट की व्यर्थ चर्बी हट जाती है और शरीर सुगठित होता है।

विधि—सर्व प्रथम 'समकाय शिरोग्रीव' की विधि से खड़े हो जाइये उसके बाद पेट की वायु नासिका द्वारा धीरे-धीरे बाहर निकाल दीजिये और साथ-साथ पेट को अन्दर सिकोड़ते जाइये, जब पेट की हवा निकाल दें तब सामने झुक कर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ लीजिये किन्तु घुटना झुकने न पायें। अब मस्तक को घुटने से लगा दीजिये यह प्रथम प्रकार का पाद हस्तासन हुआ, इसे खड़ा पश्चिमोत्तान आसन भी कहते हैं। इससे वह सभी लाभ मिलते हैं जो पश्चिमोत्तान आसन के अभ्यास से मिला करता है।

दूसरी विधि – बिल्कुल सीधे खड़े हो जाइये। अब दोनों पैरों के बीच में ढाई फुट की दूरी रखिये। अब श्वांस को नासिकारन्ध्रों

से बाहर निकाल कर सामने की ओर झुकते हुए अपने दोनों हाथों की हथेलियों को दोनों पैरों के पञ्जों के साथ (बाहरी ओर) मिलाते हुए जमीन में चिपका दीजिए यह मुख्य रूप से पाद हस्तासन कहलाता है। इसके द्वारा भी पश्चिमोत्तान आसन के सदृश लाभ होते हैं।

तीसरी विधि—पादहस्तासन की तीसरी विधि यह है कि द्वितीय विधि की ही तरह पैरों के बीच में ढाई फुट की दूरी रखते हुए खड़े हो जाते हैं और सामने की ओर झुकते हुए पैरों के पञ्जों से ढाई फुट दूर सामने आगे की ओर हाथ की हथेलियों को जमा देते हैं और गर्दन को उठा कर सामने दूर दृष्टि रखते हैं। यह हुआ पादहस्तासन का तीसरा प्रकार। इसे उष्ट्रासन भी कहते हैं। इसके भी सभी लाभ पूर्ववत् हैं।

बन्ध—इन तीनों प्रकार के पादहस्तासनों में उड्डीयान बन्ध लगाया जाता है। उड्डीयान बन्ध लगा देने पर मूलबन्ध अपने आप लगा रहता है।

व्याख्या—जिस समय उड्डीयान बन्ध लगा कर सामने की ओर झुकते हैं उस समय स्नायु मण्डल जो पैर में स्थित हैं उनमें कम्पन पैदा हो जाता है और वह कम्पन ऊपर की ओर उठते-उठते पिण्डली, सक्थि, कटि से होता हुआ पार्श्विकाओं में प्रवेश करता हुआ मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है यह कम्पन स्नायु-मण्डल को तीव्रगति से कम्पित करके उनके मलों को उनसे पृथक कर देता है। निर्मल हुआ स्नायु-मण्डल शुद्ध रक्त एवं रसों से युक्त हो जाता है, उनमें एक नवीनता आ जाती है उनमें ताजगी आ जाती है और अभ्यासी शरीर के हल्केपन की अनुभूति करता है, उसको अपना शरीर हल्का दिखाई देता है। पूरे शरीर में स्फूर्ति फैली रहती है।

महावीरासन

उपादेयता—इस आसन का नाम पूर्ण सामर्थ्यों से युक्त श्री हनुमान जी के स्वरूप को बतलाने वाला है। श्री हनुमन्त जी अपने ब्रह्मचर्य बलके लिए प्रसिद्ध हैं। आसनाभ्यासी इस आसन का अभ्यास करते हुए श्री हनुमान जी के स्वरूप का ध्यान करता है। जो जिसका ध्यान करता है वह उसी को प्राप्त होता है क्योंकि यह नियम है कि—

यान्ति देवव्रता देवा-
न्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या
यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।
(गीता ९/२५)

अर्थात् जो जिसका ध्यान, पूजन करता है वह उसी को प्राप्त होता है जो देवताओं का ध्यान करते हैं वह देवता बन जाते हैं और जो

पितरों का ध्यान पूजन करते हैं वह पितरों को प्राप्त होते हैं। जो भूत-प्रेतों का ध्यान-पूजन करते हैं वह भूत-प्रेतों को प्राप्त होते है। इसी नियम से इस आसन का अभ्यासी श्री हनुमान जी के स्वरूप का ध्यान करता है। श्री हनुमान जी का ध्यान करने से वे ब्रह्मचर्य के निधान हैं अतः साधक को ब्रह्मचर्य बल नियमित मिल जाता है। ब्रह्मचर्य की बहुत बड़ी महिमा है हमारे आचार्यों ने शास्त्रों में स्पष्टतः लिखा है देखिये भगवान सदाशिव मां पार्वती से क्या कह रहे हैं –

सिद्धे बिंदौ महायत्ने कि
न सिद्धयति पार्वती ।
ईशत्वं यत्प्रसादेन ममापि
दुर्लभं भवेत् ॥

(शिवसंहिता)

अर्थात् अत्यन्त प्रयत्न करके जिसने वीर्य को जीत लिया वह अपने सभी कार्य सिद्ध कर सकता है उसके लिए कोई कार्य ऐसा नहीं है जो वह न कर सके मुझे जो दुर्लभ ईशत्व की प्राप्ति हुई है उसका कारण हे पार्वती ! बिन्दु जय ब्रह्मचर्य ही है। अतः ब्रह्मचर्य की इच्छा करने वालों को इस आसन का अभ्यास करते रहना चाहिए।

विधि—'समकायशिरोग्रीवः' के नियम से खड़े होने के बाद एक पैर आगे जितना बढ़ाकर रख सकते हैं उससे थोड़ा कम आगे बढ़ा कर रख दीजिये। अब पैर के पंजे को पृथ्वी पर जमाते हुए घुटने पर से नीचे को झुक जाइये इस समय अगले पैर की ऐड़ी थोड़ी जमीन से ऊपर उठ जायेगी और पिछले पैर की अंगुलियाँ एवं थोड़ा-थोड़ा पंजा जमीन से स्पर्श करता रहेगा। ऐड़ी पूरी-पूरी उठ जायेगी। अब अगले पैर वाला हाथ आगे और पिछले पैर वाला हाथ पीछे अर्थात् यदि बाँया पैर आगे है तो बाँया हाथ भी आगे और दांया हाथ पीछे की ओर फैला दीजिए, अब आगे वाले हाथ की कुहनी पर से १२० अंश के कोण पर मोड़ दीजिये और उतना ही कलाई से हथेली को मोड़ दीजिये और अपनी दृष्टि अंगुली के शीर्ष भाग पर रखिये। पीछे वाले हाथ की कोहनी पर से १६० अंश के कोण पर मोड़ दीजिये और कलाई से हथेली को भी उतना ही मोड़ दीजिये। अब पंजे के बल स शरीर में हल्का-हल्का उछाल देते हुए 'मैं' हनुमान हूँ और मेरे हाथों पर पहाड़ और गदा है इस वजन को लिये हुए मैं उड़ता हुआ जा रहा हूँ। ऐसा ध्यान करें। यही महावीर आसन है।

बन्ध—मूलबन्ध और उड्डीयानबन्ध स्वतः ही लगा रहता है जिससे ब्रह्मचर्य बल बढ़ता है।

व्याख्या—इस आसन में वीरभाव का ध्यान होने से उत्साह बढ़ता है हृदय अपनी पूरीगति के साथ कार्य करता है जिससे रक्त-शोधन विशेष रूप से होता है। पूरे शरीर का व्यायाम हो जाता है। सभी कोशिकाओं और उनके न्यूक्लियस के अन्दर जागृति पैदा हो जाती है और उनको नया जीवन मिलता है। –क्रमशः

ऐतिह्य !

❀ श्री राघवेन्द्र तिवारी

मैं परिस्थिति वश
एक ऐसी भिन्नता बन गया हूँ—
जो कि पूजा पाठ तथा
समस्त प्रार्थनाओं के बावजूद
एक रसता में नहीं हो पाता
परिवर्तित
समय इसका साक्षी है
मैं कई बार ऐसा कुछ
कर गुजरना चाहता हूँ किन्तु
ऐतिह्य और सम्भाव्य विकल्प
मुझे कई गुना पीछे देते हैं धकेल
मैं तब केवल 'मैं' रह जाता हूँ
जिसे मैं अपने 'मैं' के साथ
अभी तक अनुभव करता
रहा होता हूँ
वह साथ नहीं होता
और तब रह जाती है
अव्यक्त टीस
जिसे पाप के अलावा
और क्या कहा जा सकता है ?

एक संक्षिप्त परिचय—

बौद्ध योगाचार्य बुद्धघोष और उनका विशुद्धि मार्ग

डा० श्री बालमुकन्द, प्रवक्ता (हिन्दी) सेण्टऐण्ड्रयूज कालेज, गोरखपुर

यह एक सार्वभौम और चिरंतन सत्य है कि योग से निरन्तर मानव जीवन अपनी तेजस्विता और अस्मिता को निखारते हुए दिव्यानन्द लोक में पहुँचता रहा है और उसकी (योग की) यह अक्षुण्ण मात्रा जन-मानस की कन्दराओं में प्रविष्ट हो सदा एक अनुकूल और मनोरम मार्ग का निर्धारण करती रहेगी। आचार्य पतञ्जलि कृत योग-दर्शन वह दिव्य चक्षु है जो विविध धर्मों और दर्शनों में भी अपनी सहज गति और प्रवेश रखता है।

आचार्य बुद्धघोष अपने युगके एक महान बौद्ध योगाचार्य थे जिन्होंने त्रिपिटकों की व्याख्या प्रस्तुत की। इनका विशुद्धिमार्ग (विसुद्धि-मग्ग) बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध योग परक ग्रंथ है, जिसमें योग के स्वरूप तथा उसके महत्व का प्रतिपादन किया गया है। शील, समाधि, और प्रज्ञा इसके मुख्य विषय हैं।

विशुद्धि मार्ग के प्रारम्भ में यह कहा गया है—एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में विच-रण कर रहे थे कि किसी देव पुत्र ने उनके समीप आकर उनसे प्रश्न पूछा—

अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता पजा। तं तं गोतम पुच्छामि को इमं विजटये जटंति।

अन्दर भी उलझन है, बाहर भी उलझन है। यह जनता उलझन में जकड़ी हुई है। अतः हे गौतम! मैं तुमसे पूछता हूँ—कौन इस उलझन को सुलझा सकता है? इसके उत्तर में भगवान ने दूसरी गाथा कही—

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो चित्तं पञ्ञञ्च भावये। आतापी निपक भिक्खु सो इमं विजटये जटन्ति।

अर्थात् शील में प्रतिष्ठित होकर प्रज्ञावान मनुष्य जब समाधि और प्रज्ञा की भावना करता है, तो इस प्रकार उद्योगी और ज्ञान-वान भिक्षु होते हुए वह उस उलझन को सुलझा देता है।

भगवान बुद्ध के उक्त उत्तर के आधार पर आचार्य बुद्धघोष ने योगपरक एक क्रमबद्ध ग्रन्थ की रचना की जिसका नाम विशुद्धि-मार्ग है।

आचार्य बुद्धघोष के अनुसार विशुद्धि का अर्थ है—सर्व मल रहित, अत्यन्त परिशुद्ध निर्वाण और मार्ग का अर्थ है—प्राप्ति का उपाय। इस प्रकार सर्व मल रहित, अत्यन्त परिशुद्ध, निर्वाण की प्राप्ति का उपाय विशुद्धि मार्ग है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल २३ परिच्छेद हैं। प्रथम दो परिच्छेदों में शील या सदाचार का वर्णन है। ३ से १३ परिच्छेदों में समाधि भावना का निर्देशन है। १४ से २३ परिच्छेदों में प्रज्ञा का विवेचन है।

प्रथम परिच्छेद आचार्य ने शील क्या है? शील को किस अर्थ में ग्रहण किया जाना चाहिए। शील के लक्षण, सार, स्वरूप और आसन्न कारण क्या है? शील का सुपरिणाम क्या है? शील कितने प्रकार का है। शील का मैला होना क्या है? शील का निर्मल होना क्या है? आदि प्रश्नों पर विचार किया है।

साधारण अर्थ में सदाचार ही शील है। सदाचार सम्बन्धी अनेक नियम बताये गये हैं। गृहस्थ श्रमण और भिक्षु के लिए शील की अलग-अलग व्यवस्था है। इन्हें गृहस्थशील, श्रामणेरशील और भिक्षुशील की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य के आचरणों के द्वारा नैतिक नियम प्रतिबिम्बित होते हैं। आचरणों का प्रकटीकरण तीन कर्मों द्वारों द्वारा होता है—(१) काय कर्म (२) वाक् कर्म (३) मनो कर्म। इसी प्रकार कर्मों के भी मोटे तौर पर दो भेद किये जाते हैं—(१) कुशल कर्म (२) अकुशल कर्म। अकुशल काय कर्म तीन प्रकार के माने गये हैं (१) प्राणघात (२) चोरी (३) व्यभिचार। अकुशल वाक् कर्म के चार भेद हैं—(१) झूठ बोलना २) चुगली करना (३) कटुवचन (४) निरथक बोलना। अकुशल मनोकर्म के तीन भेद हैं—(१) विषम लोभ (२) विद्वेष (३) मिथ्या दृष्टि। इन दस अकुशल कर्मों के विलोम रूप कुशल कर्म कहलाते हैं।

भगवान बुद्ध ने शीलों के अनेक सुपरिणाम बतलाये हैं। किसी अवसर पर अपने शिष्यों को स बोधित करते हुए उन्होंने कहा था—शील आध्यात्मिक जीवन का आधार है। जिस चित्त मल को गंगा, यमुना, अचिरवती (राप्ती), सरयू, मही और महानदी जैसी नदियों की जलराशि भी धो नहीं सकती, उसे शील रूपी जल ही धो सकता है। मालती आदि पुष्पों की सुगन्धि केवल अनुवात में फैलती है, लेकिन शील की सुगन्धि न केवल अनुवात में अपितु प्रतिवात में और चारों

ओर फैलती है। शील स्वर्गारोहण के लिए सोपान है और निर्वाण रूपी नगर का प्रवेश द्वार है।१

आचार्य बुद्धघोष ने साधकों के लिए पवित्र जीवन सम्बन्धी अभ्यासों के भी उदाहरण प्रस्तुत किये है। इसके लिए उन्होंने तेरह अवधूत व्रतों का उल्लेख किया है, यथा— श्मशान, गली इत्यादि स्थानों से बिना चीथड़ों से बने चीवरों को ही धारण करने का व्रत, भिक्षा से प्राप्त भोजन से ही जीवन यापन करने का व्रत, एक ही आसन पर भोजन करने का व्रत, एकही पात्र मे सभी प्रकार के भोजन ग्रहण करने का व्रत, वृक्ष के नीचे रहने का व्रत, खुले मैदानमें वास करने का व्रत, श्मशान में वास करने का व्रत, बिना लेटे समय बिताने का व्रत आदि।

शील या सदाचार के पश्चात् आचार्य दूसरी ऊँची भूमि का वर्णन करते हैं। वह अवस्था है—समाधि। विशुद्धिमार्ग में समाधि के तीन भेद बताये गये हैं— (१) क्षणिक समाधि (२) उपचार समाधि (३) अर्पणा समाधि। क्षणिक समाधि किंचित् कुशल चित्त में उत्पन्न होती है। ध्यानावस्था के पहले उत्पन्न होने वाली समाधि उपचार समाधि कहलाती है। अर्पणा समाधि पूर्ण समाधि है, जो ध्यानावस्था में उत्पन्न होती है। इनमें प्रथम कोटि की समाधि क्षणभर के लिए होती है। द्वितीय कोटि की समाधि कुछ देर के लिए ठहरती है, तृतीय कोटि की समाधि अधिक देर तक स्थिर रहती है।

विशुद्धि मार्ग के अनुसार चित्त की तीन भूमिका मानी गयी हैं—कुशल, अकुशल और अव्याकृत। कुशल चित्त में उत्पन्न होने वाली एकाग्रता को वहां समाधि की संज्ञा दी गई है - 'कुसल चित्तेकग्गता समाधि।' किसी एक आलम्बन (विषय) में चित्त और चेतसिक धर्मों को समान और सम्यक् रूप से बिना विक्षेप और विकीर्णता के रखना ही चित्त की समाधि या समाधान (सम्यक् आधान) कहलाता है।२

प्रतिकूल परिस्थितियों में चित्त में विक्षेप आने पर समाधि मलिन हो जाती है। वही अनुकूल अवस्था प्राप्त करने पर उन्नत अवस्था में पहुँचकर स्वच्छ हो जाती है। आचार्य बुद्ध-

१. मज्झिम निकाय १, पृ० ४४ (डा० भिक्षु धर्म रत्न : विशुद्धि मार्ग की रूपरेखा पृ० १०)

२. श्री भरतसिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास पृ० ५४८ (विशुद्धि मग्ग : धर्मानन्द कोसंबी का सं० पृ० ५७)

घोष के अनुसार समाधि मार्ग में आने वाली दस बाधाओं (दस पलिबोध) से मुक्त होकर योगाभ्यासी को साधना करनी चाहिए। वे बाधायें हैं—कुल या परिवार, लाभ, शिष्यगण, कर्म, मार्ग, जाति-बन्धु, रोग, ग्रन्थ (रचना) और ऋद्धि। उन्होंने कर्म स्थानों (समाधि के आलम्बनों) को ग्रहण करने का निर्देश दिया है। इसके चालीस विषय माने गये हैं---

(क) दस कसिण (कृत्स्न–ध्यान विशेष)--पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नील, पीत, लोहित, अवदात, आलोक और आकाश।

(ख) दस घृणोत्पादक अशुभ अवस्थायें—(मृत शरीर की दस घृणोत्पादक अवस्थायें)—ऊर्ध्व मातक (फूला हुआ शरीर), विनीलक नीले रंग में परिणत शरीर, विपुब्बक-- पीब बहता शरीर, विच्छिद्दक--छिद्र पड़ा शरीर विक्खायितक जानवरों द्वारा टुकड़े कर यत्र-तत्र फेंका शरीर, हतविक्षिप्तक --हथियार से टुकड़े कर फेंका शरीर, अस्थिक—अस्थिपंजर में परिवर्तित शरीर।

(ग) दस अनुस्मृतियां-- बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति, देवतानुस्मृति, मरणानुस्मृति, कायगतानुस्मृति, आनापानस्मृति, उपशमानुस्मृति।

(घ) चार ब्रह्म विहार— मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा जैसी चार भावनायें चार ब्रह्म विहार कहलाती हैं।

(ङ) चार आरूप्य-- अरूपता सम्बन्धी ध्यानों का विवरण— आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, अकिंचन्यायतन तथा नव संज्ञानासंज्ञायतन।

(च) आहार में प्रतिकूल संज्ञा— भोजन के जीर्ण या अजीर्ण होने पर उत्पन्न परिणामों आदि के सम्बन्ध में ज्ञान होना चाहिए। इस भावना के कारण योगाभ्यासी में रस तृष्णा कम होगी और मन समाधि की ओर अग्रसर होगा।

(छ) चतुर्धातु व्यवस्थान हैं। इन्हीं के अनुसार योगाभ्यासी को शरीर के स्वभाव का निर्धारण करना चाहिए।

गुरु की खोज—आचार्य बुद्धघोष ने विशुद्धि मार्ग में इस बात का उल्लेख किया है कि पलिबोधों (बाधाओं) से मुक्त होने के पश्चात् योगाभ्यासी को योग्य गुरु की खोज कर लेनी चाहिए। यदि योग्य गुरु विहार में मिल जाय तो वहीं जाकर उससे दीक्षा लेनी चाहिए। गुरु का दर्शन प्राप्त होने पर तत्काल अपने उद्देश्य से अवगत नहीं कराना चाहिए, अपितु उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षा

करनी चाहिए। उनकी सेवा में निरन्तर रत रहना चाहिए। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव रखकर हर प्रकार से उनके प्रति अपनी विश्वास पात्रता सिद्ध करनी चाहिए।

भगवान बुद्ध ने अपने प्रथम उपदेश में शिष्यों से कहा था कि प्रव्रजितों को दो अन्तों का सेवन नहीं करना चाहिए-(१) सुखविलास (२) कायपीड़न। इन्हें चार आर्य सत्यों (दुःख दुःख समुदय, दुःख निरोध और दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपदा) को समझकर आर्य अष्टांगिक मार्ग की शरण में आना चाहिए। इनकी शरण में आने पर सभी दुःखों से मुक्ति मिल जाती है और निर्वाण की प्राप्ति होती है। ये मार्ग शील, समाधि और प्रज्ञा के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। शील के अन्तर्गत सम्यक् वचन सम्यक् कमन्ति तथा सम्यक् आजीविका है। सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि, समाधि के अन्तर्गत है। सम्यक् दृष्टि तथा सम्यक् संकल्प प्रज्ञा के अन्तर्गत है।

अविद्या से घिरा प्राणी नाना दुःखों को झेलता है। इसके मूल में तृष्णा है। प्रज्ञा नामक तीसरी भूमि से अन्तर्गत आचार्य बुद्धघोष ने स्कन्ध, आयतन, धातु, इन्द्रिय, सत्य तथा प्रतीत्य समुत्पाद के सम्बन्ध में विचार किया है। अन्त में प्रज्ञा के सुपरिणाम का विवेचन कर निर्वाण प्राप्ति के लोकोत्तर फल की ओर निर्दिष्ट किया है। इन सबका विवेचन अलग-अलग सोपानों में पातञ्जल योग-दर्शन को दृष्टिमें रखकर किया जा सकता है।

एक दिन की बात—

दादूदयाल संत नहीं बने थे, तब एक दिन की बात है कि जब वे अपनी दुकान पर बैठे हुए हिसाब करने में इतने तल्लीन थे कि द्वार पर आये अपने गुरुजी को भी निहारने की फुरसत उनको नहीं थी। बाहर मूसलाधार पानी पड़ रहा था। अचानक दादूदयाल की दृष्टि बाहर की ओर गई। वे तुरंत दौड़े और गुरुजी को छाती से लगा लिया। उनकी आंखों में आंसू आ गये। कहने लगे, क्षमा कीजिए, गुरुदेव! अपने सांसारिक कार्यों में इतना अधिक डूब गया था कि आपको निहार नहीं पाया।

गुरुने स्नेह से कहा, 'मैं थोड़े समय से ही यहां खड़ा हूं, परंतु प्रभु तो अनंतकाल से तेरे दरवाजे पर खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं कि तू उन्हें कब बुलाता है!' उस दिन से दादू के मन में बड़ा परिवर्तन आ गया। उन्होंने दुनियादारी त्याग दी।

सर्वभूतहितेरताः

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम. एड.

योगी का अधिकार और उसका सम्बन्ध भौतिक, प्राणिक, मानसिक तथा अतिमानसिक चेतना से होता है। अतः वह धर्म, मजहब, पन्थ, जाति, देश, लिङ्ग आदि सभी सीमाओं से अतीत सार्वभौम, सार्वदेशिक तथा सर्वभूतों का सदा हित करता है। उसके सम्पर्क में जो भी आ जाता है या उसके साधनाकाल में, उसके दृष्टिपथ में जो भी आ जाता है, उसका कुछ न कुछ कल्याण अवश्य होता है। यदि उस प्राणी का कोई पुण्य कर्म योगी के सम्पर्क कालमें भोगोन्मुख है तो योगी के सम्पर्क में आते ही उस पुण्य भोग-काल के परिणामस्वरूप वह प्राणी योगपथ का पथिक बन जायगा, अन्यथा कष्टकर प्रारब्ध कर्मों का भुगतान योगी के सान्निध्य से सूक्ष्म में अवश्य हो जायगा। ध्यानयोग परायण योगी जिस स्थान पर रहता है उस क्षेत्र में चतुर्दिक सतोगुण के परमाणु व्याप्त हो जाते हैं। कितने ही बुरे मन वाला प्राणी वहां पहुँच जाय कुछ समय के लिए उसका मन सतोगुणी भावनाओं से अवश्य भर जायगा। रामचरितमानस में कागभुसुण्ड जी के आश्रम के वर्णन प्रसंग में उल्लेख है कि जहां भक्तियोगी कागभुसुण्ड जी श्रीराम कथा कहा करते थे उसके एक योजन पर्यन्त माया प्रवेश नहीं कर पाती थी। उस वातावरण में पहुँच कर गरुड़ जैसे तार्किक ज्ञानी को भक्ति की अनुभूति हुई। शास्त्र तथा सन्तजन इसीलिए प्रायः कहा करते हैं—

बिनु सत्संग विवेक न होई।
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥

तथा—

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।
पारस परस कुधातु सुहाई॥

सिद्धयोगियों का संग तत्काल फल देता है। उनका संग ही सही अर्थों में सत्संग है। सिद्ध पुरुष ही तीर्थ है। उनका स्मरण मन को सतोगुण से भर देता है। उनके सम्पर्क में आने वाली हर वस्तु चिन्मय हो जाती है। उस वस्तु में उनके सात्विक परमाणु भर जाते हैं जिससे अन्य वस्तुयें भी पवित्र हो जाती हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार महापुरुषों के चित्रों के पूजन की प्रथा है। महापुरुषों के सम्पर्क से चेतन प्राणी ही नहीं अपितु जड़ पदार्थ तक

पूजनीय बन जाते हैं। भगवान बुद्ध ने जिस वृक्ष के नीचे बैठकर ज्ञान प्राप्त किया था वह बोधि वृक्ष २५ हजार वर्ष बाद भी पूजनीय है। महापुरुष जिससे कुछ सेवा ले लें उसका जीवनधन्य हो गया। उसके प्रारब्धमे असंख्यों पुण्य एकत्रित होकर उस प्राणी को कल्याण मार्ग का पथिक बना देते हैं। मनुष्य जीवन में सिद्धपुरुषों की कृपा से ही उत्कर्ष का समय आया करता है। शास्त्रकारों ने, सन्तों ने तथा विद्वानों ने सभी ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि---

मति कीरति गति भूति भलाई ।
जिहि जेहि जतन जहां जो पाई।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ ।

सन्त तथा सिद्ध पुरुष जीवों के दारुण दुःखों से द्रवित होकर लोक-कल्याण की कामना से अपने शाश्वत सुख को छोड़कर उन पर अपनी कृपायें करते रहते हैं। सिद्धों के महासिद्ध आनन्दकन्द श्री महाप्रभु जी अपने दिव्य धाम से आकर लोक-कल्याण के लिए इसी प्रकार के अनेकों साधकों को योग समाधि देकर अखण्ड अच्युत पद का पथिक बनाते रहते हैं।

आजकल परोपकार, समाज सेवा और जनकल्याण का बाजार गर्म दिखाई देता है। बड़े-बड़े सिद्धान्तों की आड़ में यह सब आत्म-प्रवंचना तथा धोखा मात्र है। जिसके मन में यश की कामना, वैभव की कामना, पदलिप्सा या प्रपंच के द्वारा दूसरों को उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा करने की भावना विद्यमान है वह जनसेवा कर ही नहीं सकता। न योग-मार्ग में भी एसे व्यक्ति को सफलता मिल सकती है। आज योगियों की और योगाश्रमों की बाढ़ सी आ रही है। क्या उसके पीछे सोलह आने जनकल्याण की भावना है? धन इकट्ठा करना, नेता बनना, मान-सम्मान की चाहना—यही सब कुछ न है इस परोपकार के पीछे। इसीलिए इन तथाकथित योगियों का प्रभाव चमत्कारों के सहारे थोड़े समय तक तो दिखाई पड़ता है किन्तु ये कभी किसी के जीवन में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकेंगे सन्देह है! सच्चा योगी वह है जो कहता कम और करता ज्यादा है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं—

न हि असन्यस्त संकल्पो,
योगी भवति कश्चन् ।

जिसकी कामनायें समाप्त नहीं हुयीं वह सही अर्थ में योगी हो ही नहीं सकता। सन्त और योगी के दरबार में कोई टिकट और फीस नहीं होती न धनी और निर्धन के साथ भेदभाव होता है। परोपकारी के पास सम्पत्ति स्वतः आती है उसे फीस लगाने की जरूरत नहीं पड़ती—

परहित बस जिनके मन माहीं ।
तिनको जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

'परहित सरिस धर्म नहिं' परोपकारी के पास ऋद्धियां और सिद्धियां स्वतः आ जाती हैं। ईश्वर ने हमें सूर्य, हवा, जल जैसी जीवन के लिए नितान्त आवश्यक चीजें दीं किन्तु बदले में वह कृतज्ञता से अधिक कुछ नहीं चाहता। और हम मिट्टी को भी ऊँची से ऊँची कीमत लेकर दूसरों पर अहसान जताकर देना चाहते हैं। समाज में आर्थिक विषमता और वर्ग संघर्ष का यही कारण है। हम सेवक के स्थान पर सम्पत्ति के स्वामी बन गये हैं। हम अपने जीवन की सबसे बड़ी सफलता इसी में मानते हैं कि दूसरों को वंचितकर सब वस्तुओं को हम अपने लिए सुरक्षित कर लें। जब तक अन्तर्जगत में व्यक्ति का प्रवेश नहीं होता वह सही अर्थ में जनता की सेवा कर ही नहीं सकता। भगवान श्रीकृष्ण गीता में परोपकार का उसे ही अधिकारी मानते हैं जो मन्दिर में दीपक जलाने से पहले अपने घर में प्रकाश कर लें—

योऽन्तः सुखोऽन्तरा-
रामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं
ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाण-
मृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः
सर्वभूतहितेरताः ॥
(गीता ५/२४/२५)

अर्थात् जो योगी अन्तर्जगत का द्रष्टा बन चुका है तथा उसके फलस्वरूप आत्मसुख और अन्तःप्रकाश प्राप्त कर चुका है वह ब्रह्म भाव तथा ब्रह्म की सृष्टि के साथ एकात्मभाव द्वारा पापरहित होकर द्वन्द्वों से रहित निर्विकार स्थिति में रहकर सभी प्राणियों का हित साधन करते हुए जीवन्मुक्ति का आनन्द प्राप्त करता है। ⊙⊙

संगति कीजे साधु की, हरे और की व्याधि ।
ओछी संगति क्रूर की, आठों पहर उपाधि ॥

जहां काम तहँ राम नहिं, जहां राम नहिं काम ।
दोनों कबहू ना मिलै, रवि रजनी इक ठाम ॥

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढ़े बन माहिं ।
ऐसे घट में पीव है, दुनियां जाने नाहिं ॥

सब घट मेरा साइयां, सूनी सेज न कोय ।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय ॥ —कबीर

बदलते मौसम की बीमारी से-

बचाव व इलाज

श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री, कायाकल्प कैंसर अनुसंधान केन्द्र सफीदों, (हरियाणा)

भारत में अन्य देशों की अपेक्षा छः ऋतुयें हैं जो अपने-अपने समय पर अपना स्वरूप प्रकट करती हैं। हमारा वर्ष बसन्त ऋतु से प्रारम्भ होता है। इसीलिए इसे ऋतुराज कहते हैं। बसन्त के बाद ग्रीष्म तथा वर्षा का आगमन होता है। इसी प्रकार बारहों महीनों में २-२ मास के हिसाब से छःहों ऋतुयें अपना क्रम रखती हैं। अर्थात् इनकी एक आवृत्ति एक वर्ष कहलाती है। यह वर्ष सूर्य और चन्द्रमा के दिनों से बनता है। कारण सृष्टि को चलाने वाले विराट् पुरुष के ये दोनों नेत्र हैं। सूर्य सोमात्मकं जगत है। यह दोनों ही प्राणी मात्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। प्राणी निरन्तर श्वास लेता है। ये दोनों नासिकारन्ध्र सूर्य और चन्द्र हैं। प्रातः सूर्योदय के समय यदि चन्द्र स्वर चले तो शुभ सूचक है। यह दोनों निरन्तर साढ़े तीन घण्टे में बदलते रहते हैं। इसीसे ठीक साढ़े तीन घण्टे में हमारा शरीर भी बदलता रहता है। और इसी अनुपात से बाल्यावस्था, जवानी तथा बुढ़ापा आता है। तथा अन्तमें यह शरीर नाश को प्राप्त हो जाता है। यह क्रम प्राणी मात्र का है।

यह ऋतु परिवर्तन या यों कहें कि यह मौसम का बदलना नियमित है, जैसे सूर्योदय के बाद सायं रात्रि का आना और रात्रि के बाद सूर्योदय का होना, यह क्रम अनन्तकाल से चला आता है और चलता रहेगा। प्राणी आयेंगे और चले जायेंगे, पर यह क्रम बराबर चलता रहेगा। यही संसार का नियम है। अर्थात् एक दिन प्राणी आया है और एक दिन चला जायगा। यह दो दिन का समय मानव को समाज सेवा, देश सेवा के लिए मिला है, इस समय को यदि अपने प्रज्ञापराध में व्यर्थ गंवा दिया तो इससे बड़ा अन्य अपराध नहीं।

इन ऋतुओं के परिवर्तन में जो मानव शरीर पर प्रभाव पड़ता है, इसे ऋतुपरिवर्तन कहते हैं। इसी को दूसरे शब्दों में मौसम का बदलना कहा जाता है। इस बदलते मौसम में प्रायः अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें मुख्य प्रतिश्याय (नजला) है। यह मानव को

नितान्त कष्ट देता रहता है। घास में छिपे सर्प के समान जब भी समय पाता है, अपना प्रभाव जमा बैठता है। यह हमारे शरीर में रहने वाले सूर्य की विकृति के कारण होता है। अर्थात् नाक द्वारा हरे, पीले, सफेद रंग का लसदार पानी बहने लगता है। व्यक्ति छींकते-छींकते परेशान हो जाता है। हर समय नाक पर रूमाल रखना पड़ता है। प्रातः उठते ही छींकों का दौर शुरू हो जाता है, जब तक काफी पानी न झड़ लें तब तक शान्त नहीं होता।

यही नजला अनेक रोगों का कारण बनता है। यदि यह सब श्वास वाहिनी पर पड़ा तो श्वास (दमा) रोग का कारण बनता है, और यदि फेंफड़ों पर पड़ा तो यक्ष्मा T. B. का कारण बनता है। यदि हाथ या पैर की ओर इसका आक्रमण हुआ तो मनुष्य पंगु, लंगड़ा (लकवा) अर्धाङ्ग वात का रोगी बन जाता है। यदि इसका प्रभाव हृदय की ओर हुआ तो हृदगति अवरोध (हार्टफेल) हो जाता है। जो आज कल बहुतायत से देखा जाता है और यदि यह मलाशय की ओर गया तो मल शुष्क होकर इसी विष संचित हो कैन्सर जैसे महा भयानक रोग का जन्म दाता बन जाता है। इसका ऊर्ध्वगत होना बालों को असमय में सफेद बना देता है। यदि कानों पर इसका प्रभाव हुआ तो व्यक्ति बहरा बन जाता है। आँखों को स्थिति में यह मोतिया-बिन्द का कारण बनता है।

वास्तव में यह प्रतिश्याय (नजला) ही सब रोगों का मूल कारण हुआ। इसका अंकुर उदर विकार है। अर्थात्—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।

सब रोगों का निदान मलों का कुपित होना है। अब इस निदान के बाद आप इधर ध्यान दीजिए। कार्य से पहले कारण का होना आवश्यक है। हम अपने नित्य के व्यवहार में असमय भोजन, अध्यशन, दिन भर बकरी के समान चरते रहते हैं तो आप ही बतलाइये यह इस शरीर पर अन्याय नहीं तो और क्या है। यह पेट कोई कबाड़ी की दुकान तो है नहीं कि जो जीमें आया ठूस दिया।

यह जीवन बहुमूल्य है। राष्ट्र की निधी है। इसे व्यर्थ नष्ट करने का दुःसाहस न कीजिए। जिह्वा लोलुपता के कारण जो व्यक्ति अपने शरीर का ध्यान नहीं रखता वह असमय में ही काल का ग्रास बनता है। जैसे लोकोक्ति है—

बीस कठौती मट्ठा पीवै, बत्तीस रोटी खाय।
ताके मरे न रोइये, घर का दारिद जाय॥

अर्थात् जो अपने स्वास्थ्य को न देख अनाप-सनाप खाता रहता है उसके शीघ्र मरने में कोई शोक नहीं, कारण वह तो अपनी मौत को स्वयं बुला रहा है।

अस्तु, अब आप चिकित्सा की ओर ध्यान ध्यान दीजिये। जो व्यक्ति अपने जीवन को सुखी स्वस्थ दीर्घजीवी बनाना चाहता है, उसे गुरोपदिष्ट नियमों का पालन करना चाहिए।

सबसे पहले शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अपनी प्रकृति के अनुकूल व्यायाम करें। योग मार्ग निर्दिष्ट 'जीवन तत्व साधन' का अभ्यास करें, जिससे शरीर नीरोग रहेगा। मान लीजिए - कभी कोई रोग आ ही गया तो उसका उत्तम उपचार नेति आदि क्रियाओं द्वारा करना चाहिए। नेति प्रतिश्याय (नजला) से बचने के लिए सर्वोत्तम उपाय नेति क्रिया है। सर्व साधारण के लिए जलनेति अतिसुगम है। इसके अभ्यास से रोग मुक्ति तथा शरीर स्वस्थ रहेगा।

विधि—प्रातः नित्य क्रिया से निवृत्त हो कुछ गुनगुना पानी लीजिए। उसमें थोड़ा नमक मिला दीजिये फिर उसे चुल्लु में भरकर नाक द्वारा सुड़क जाइये। नाक साफ कर अपनी सुविधानुसार तेल या घी नाक में डालिए। यह एक सुगम उपाय है। इस क्रिया के करने से सिरदर्द, नजला, असमय में बालों का पकना, चश्मा आदि नहीं लगाना पड़ेगा। आपका जीवन सुखकर होगा। अन्य यौगिक क्रियाओं को सीखने के लिए निःशुल्क योग प्रशिक्षण केन्द्र आर. के. पुरम् सैक्टर ४ में तथा अन्य भी यौगिक केन्द्रों में सीख सकते हैं। इनसे लाभ उठाइये तथा वृथा शरीर का शोषण करने वाली दवाओं के जाल से बचिये।

मान लीजिये—यदि कोई रोग हो ही जाय जाय तो बाजारू गोलियों पर निर्भर न रहिये जैसे बसों में या मजमे लगाकर बेचने वाले लोग १ रु० में १० गोली बेचते रहते हैं। यह सस्तापन आपके जीवन को घातक बन सकता है। इसलिए आवश्यकता पर किसी योग्य वैद्य या डाक्टर से परामर्श लें।

अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल ही औषधि लीजिए जिससे आप कष्ट से बच जायेंगे। आज जो समाज की स्थिति है जिससे अस्पताल भरे पड़े हैं। आपात कालीन वार्डों में भी स्थान नहीं। इसका कारण हमारा प्रज्ञापराध है। हम अपने ही दोष से तथा इन्द्रियों के वशीभूत हो रोग भोगते हैं। इनसे बचने के उपाय युक्ताहार विहार पर ध्यान दीजिये।

नजला, सिरदर्द, उदर विकार इनकी चिकित्सा आप घरेलू तरीके से भी कर सकते हैं। इनके लिए तुलसी बनफसा का काढ़ा,

उपयुक्त है। नजले के बाद खांसी हो जाती है, उसके लिए शितोपलादि चूर्ण लवंगादिवटी, एलादिवटी का व्यवहार उपादेय है। आज देहात में क्या शहरों में भी ज्वर बुखार का दौर विशेष रूप से देखने में आता है। यह बुखार इतना कष्टकर है कि जिस व्यक्ति को एक बार हुआ, तो शरीर को निचोड़ देता है। डाक्टर लोग इसमें कुनैन का प्रयोग करते हैं। तथा सरकार की ओर से स्थान-स्थान पर बांटी जा रही हैं, परन्तु परिणाम शून्य है। आज की दवाओं से छिड़काव करने पर मच्छर नहीं मरता, और जहां यह काटता है ज्वर अवश्य आता ही है। इसके लिए आप घरेलू चिकित्सा में चोकर को ले उसमें थोड़ा नमक मिला पाव भर पानी में पका लीजिए आधा पाव रहने पर पीकर सो जाइये। पसीना आकर बुखार उतर जायगा। परन्तु आज का मानव इन पुरानी वस्तुओं पर ध्यान न देकर सुई लगवाने में ही ज्यादा ध्यान देता है जिससे पैसा देकर रोग खरीदा जाता है। प्रकृति के विरुद्ध चलने से कष्ट ही होगा। अपनी प्रकृति के अनुकूल उपरोक्त क्रियाओं का अवलम्बन ले स्वस्थ रहिये। विशेष पढ़ने का यदि आपको ध्यान है तो सद् साहित्य का अवलोकन कीजिए।

❀ ध्यान की विधि ❀

जोर जबरदस्ती करके ज्यादा जप ध्यान नहीं करना चाहिए, जिससे अतिरिक्त थकावट या अवसाद का अनुभव होने लगे। उससे से कभी हित का अहित हो जाता है। जप-ध्यान को क्रम से धीरे-धीरे बढ़ाना उचित है। आन्तरिकता और दृढ़ संकल्प हुआ तो प्रभु कृपा से समय आने पर सब होगा और सब मिलेगा।

खूब निष्ठा, अध्यवसाय और धैर्यपूर्वक जप-ध्यान करते चलो। धीरे-धीरे मन स्थिर होगा, ध्यान जमेगा,—और वह एक नशे की आदत सा हो उठेगा। एक भी दिन नहीं किया तो कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा, महा अशान्ति का अनुभव होगा, जैसा नशाखोरों को नशे की वस्तु न मिलने पर होता है। तब सभी फीका-फीका लगेगा। इच्छा होगी, सदा उसी में ही डूबा रहूँ।

—स्वामी विरजानन्द

पूर्व प्रकाशित से आगे—

—योगी की आत्म-कथा से

卐 इच्छा-शक्ति से स्वास्थ्य-लाभ 卐

❀ प्रेषक : डा० श्री विजयसिंह

ईश-तत्त्व का पर्याय गुरु-तत्त्व है। गुरु-तत्त्व का विलास जब मानव काया में विलसित होने लगता है, तब एक व्यक्ति का व्यक्तित्व व्यष्टिगत न होकर समष्टिगत प्रतिलक्षित होने लगता है। आम सामाजिक बोल-चाल में ऐसा व्यक्तित्व रखने वाले को ही गुरु देव कहते हैं। गुरुपद उपलब्ध व्यक्ति अध्यात्म के सूक्ष्मतम्, गहनतम् बोध को साक्षात् जीवन में जीता है, सुषुप्ति में भी पूर्ण जाग्रत रहकर भोगता है। सच्चे अर्थों में गुरु ही पूर्ण जाग्रत साकार चैतन्य विग्रह हुआ करते हैं।

ऐसे परम कारुणिक, मानव काया में आबद्ध श्री गुरुदेव मानव को सतत् आध्यात्मिक उत्थान की ओर आकर्षित करते रहते हैं। अधिभूत, अधिदैव तथा अध्यात्म के भी आधार वही चैतन्य रूप श्री गुरुदेव ही हैं। अतः वे अपनी अहैतुकी कृपा से सहज ही किसी भी साधक को इच्छा तथा इच्छा-शक्ति का भेद बता दिया करते हैं। साधारण इच्छाओं के वशीभूत होकर मानव जन्म-चक्र में झूलता भटकता रहता है। परन्तु आत्म-शक्ति का बोध गुरु-कृपा से हो जाने पर वही साधारण इच्छा, इच्छा-शक्ति में परिवर्तित होकर भव-चक्र-निस्तारक सिद्ध होती है। फिर भला प्रचण्ड इच्छा शक्ति से रोगों का नाश कर सकना कौन-सी असम्भव बात होगी? रोगों का मूल कारण पाप कर्मों का फल होता है। पाप से अभ्यान्तरिक शक्ति निर्बल हो उठती है। फिर शरीर के स्थूल अवयवों पर उत्पन्न प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यदि पुनः इच्छा-शक्ति प्रबल बना ली जावे तो आशातीत एवं सद्यफल प्राप्त हो जाता है। रोग के निवारण में डाक्टरों का भी यही अभिमत है कि दवा से अधिक रोगी की इच्छा-शक्ति अधिक कार्य किया करती है।

बालक मुकुन्द के जीवन में घटी एक घटना जिसका आधार उनके योगेश्वर गुरुदेव की निजी अनुभव से अनुप्राणित रहा था, इस प्रकरण से स्वयमेव कैसे इच्छा-शक्तिसे अलभ्य लाभ स्वयं प्राप्त होता है प्रकट हो जावेगा।

मुकुन्द के गुरुदेव श्री युक्तेश्वर जी कहा करते थे कि जिन व्यक्तियों ने शरीर विज्ञान का अध्ययन किया है, उन्हें और आगे बढ़ना चाहिए, और आत्म-विज्ञान का अनुसंधान

करना चाहिए। शरीर के स्थूल ढांचे की आड़ में एक सूक्ष्म आध्यात्मिक तन्त्र छिपा है।

मुकुन्द के प्रारम्भिक आश्रम निवास काल में एक दिन श्री युक्तेश्वर जी बोले—मुकुन्द, तुम बहुत दुबले हो। उनके इस कथन ने मुकुन्द के मर्मस्थल को छू लिया। क्योंकि उसे स्वयं अपनी धसी हुई आंखें और क्षीणकाया नहीं भाती थी। पुराने अजीर्ण रोग ने उसे बचपन से ही पस्त कर रखा था। ४, गड़पार रोड वाले उसके घर में शक्तिवर्धक दवाओं की शीशियां धरी रहतीं परन्तु उनमें से किसी से लाभ नहीं हुआ। कभी-कभी वह दुःखित होकर स्वयं से पूछने लगता कि ऐसा अस्वस्थ शरीर लेकर जीवित रहने का क्या कोई उपयोग है ?

औषधियों की सीमा होती है, दिव्य संजीवनी प्राण-शक्ति की कोई सीमा नहीं है। इसमें विश्वास रखो, तुम स्वस्थ और मजबूत बन जाओगे।

श्री गुरुदेव के वचनों से उसे तुरन्त विश्वास हो गया कि वह उपरोक्त कथनों में निहित सत्य को अपने जीवन में उजागर कर सकता है। क्योंकि कोई भी डाक्टर इतना गहरा विश्वास उसमें अब तक उत्पन्न कर सकने में समर्थ नहीं हो सका था। परिणामस्वरूप उसके स्वास्थ में नित्य प्रगति होने लगी। श्री युक्तेश्वर जी के मौन आशीर्वाद से दो सप्ताह के अन्दर ही उसके शरीर का वजन इतना बढ़ गया, जितना अथक प्रयासों से भी पहले कभी नहीं बढ़ा था। तथा उसके पेट की गड़बड़ियां सदा के लिए दूर हो गयीं।

मुकुन्द ने देखा था कि अनेक व्यक्तियों का मधुमेह, मिरगी, यक्ष्मा अथवा पक्षाघात आदि रोगों का निदान मात्र श्री गुरुदेव की दैवी कृपा से हो जाया करता था।

श्री युक्तेश्वरजी ने एक आप बीती घटना मुकुन्द में आत्म-विश्वास जागृत करने के लिए बतलायी। उन्होंने कहा—वर्षों पहले एकबार मैं भी अपने अल्प वजन से चिन्तित हो उठा था। जब गम्भीर बीमारी से उठने के बाद मैं काशी में श्री गुरुदेव भगवान लाहड़ी महाशय के दर्शनार्थ गया तब उनके श्री चरणों में निवेदन किया—गुरुवर, मैं बीमार हूँ, और मेरा वजन बहुत घट गया है।

'युक्तेश्वर, ! मैं देखता हूँ कि तुमने स्वयं रोग बुला लिया है और अब सोचते हो कि तुम दुबले हो गये हो।'

यह उत्तर मेरी आशा के बिलकुल विपरीत था। फिर भी, मेरे श्री गुरुदेव ने मेरा उत्साह-वर्धन करते हुए कहा—अच्छा मुझे विश्वास है कि कल तुम अपने को बहुत स्वस्थ अनुभव करोगे।

मेरे श्रद्धालु मन ने यह भान पा लिया कि श्री गुरुदेव के ये कृपा शब्द के साथ उनकी दिव्य-शक्ति अवश्य ही अब मुझे रोग मुक्त कर देगी। दूसरे दिन सचमुच मैं पूर्ण स्वस्थ अनुभव कर रहा था। उल्लासपूर्वक श्री गुरुदेव को जाकर बतलाया—गुरुजी, आज मैं स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। उन्होंने कहा—सचमुच ! मैं देखता हूँ कि आज तुम अपने आप शक्ति उत्साह से पूरित हो।

मैंने सविनय प्रतिवाद करते हुए कहा—नहीं गुरुवर ! यह तो आपकी ही दया का फल है। आज कई महीनों के बाद मैं अपने अन्दर शक्ति का अनुभव कर रहा हूँ। इस पर श्री गुरुदेव ने कहा - हां, तुम्हारी बीमारी अत्यन्त गम्भीर थी। तुम्हारा शरीर अब भी बहुत दुर्बल है। कमजोरी के पुनः लौट आने की सम्भावना के विचार मात्र से मैं भयत्रस्त हो उठा। दूसरे दिन प्रातःकाल बड़ी कठिनाई से घिसटते-घिसटते श्री लाहड़ी महाशय की सेवा में उपस्थित हुआ। 'गुरुजी, मैं फिर बीमार हो गया हूँ'। गुरुजी ने एक रहस्य भरी दृष्टि से मुझे देखा और कहा—ऐसा ! तुमने पुनः अपने को बीमार बना लिया है।

मेरा धैर्य जाता रहा। मैंने कहा—गुरुदेव! आप मेरी क्यों वंचना कर रहे हैं, मैं यह समझ नहीं पाता कि आप मेरी सच्ची बातों पर क्यों विश्वास नहीं कर रहे हैं। श्री गुरुदेव मुस्कराते हुए बोले—यथार्थ में यह तुम्हारे अपने विचार ही हैं, जो बारी-बारी से तुम्हें कमजोर और मजबूत बना देते हैं। तुमने स्वयं देख लिया है कि तुम्हारा स्वास्थ तुम्हारे अवचेतन मन के विचारों के अनुसार ही चलता है। मानव चित्त सर्व शक्तिमान ईश-चैतन्य का ही एक स्फुलिंग है। तुम परीक्षण कर सकते हो कि तुम्हारा शक्तिशाली मन जिस किसी बात में उत्कट विश्वास रखता है, वह अविलम्ब घटित हो जाती है।

यह जानते हुए कि गुरुदेव कभी व्यर्थ बातें नहीं करते, मैंने भारी श्रद्धा और कृतज्ञता के साथ उनसे निवेदन किया, गुरुवर, यदि मैं ऐसा विचार करूं कि मैं स्वस्थ हूँ तथा मेरा वजन पूर्ववत् हो गया है, तो क्या ये दोनों बातें घटित हो जायेंगी ? उन्होंने मेरी आँखों में अपनी दृष्टि गड़ाये हुए गम्भीरता के साथ कहा—निश्चित रूप से। इस क्षण भी ऐसा ही है। तत्काल ही मुझे न केवल बल में, अपितु शारीरिक वजन में भी वृद्धि अनुभव हुई। श्री लाहड़ी महाशय मौन हो गये। उनके सानिध्य में कुछ घण्टे व्यतीत करने के बाद मैं अपने घर लौट आया, जहां मैं काशी यात्रा में ठहरा हुआ था।

मुझे देखकर मेरी मां आंखें फाड़कर देखती रही और बोली-बेटा तुमको क्या हो गया है? तुम्हें क्या शोथ (फूलने) की बीमारी तो नहीं है ? वस्तुतः मेरा शरीर वैसा ही हृष्ट-पुष्ट हो गया था, जैसा रोगग्रस्त होने के पहले था।

—क्रमशः

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

❀ महर्षि शौनक का उपदेश ❀

शोकस्थान सहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे-दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥

मूढ़ मनुष्यों को प्रतिदिन सैंकड़ों और हजारों भय और शोक के अवसर आया करते हैं । ज्ञानियों के सामने नहीं ।

× × × ×

तृष्णा हि सर्व पापिष्ठा नित्योद्वेग करी स्मृता ।
अधर्मं बहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी ॥

यह तृष्णा महा पापिनी है, उद्वेग पैदा करने वाली है । अधर्म से पूर्ण और भयंकर है । तथा समस्त पापों की जड़ है ।

× × × ×

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥

दुर्बुद्धि वाले मूर्ख इसका त्याग नहीं कर सकते । बूढ़े होने पर भी यह बूढ़ी नहीं होती । यह प्राणों का अन्त कर देने वाली बीमारी है । इसका त्याग कर देने पर ही सुख मिलता है ।

× × × ×

अनाद्यन्ता तु सा तृष्णा अन्तर्देहगता नृणाम् ।
विनाशयति भूतानि अयोनिज इवानलः ॥

जैसे लोहे के भीतर प्रवेश करके सर्व नाशक अग्नि उसका नाश कर देती है वैसे ही प्राणियों के हृदय में प्रवेश करके यह तृष्णा भी उनका नाश कर देती है ।

अन्तो नास्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम् ।
तस्मात् सन्तोष मेवेह परं पश्यन्त पण्डिताः ।

तृष्णा का कहीं अन्त नहीं, सन्तोष ही परम सुख है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष सन्तोष को ही परम सुख मानते हैं।

× × × ×

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं रत्नसंचयः ।
ऐश्वर्यं प्रिय संवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः ॥

यह जवानी, सुन्दरता, जीवन, रत्नों के ढ़ेर, ऐश्वर्य और प्रिय वस्तुयें तथा प्राणियों का समागम सभी अनित्य हैं। इसलिए विद्वानों को उचित है इनके परिग्रह का त्याग करदें।

× × × ×

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा दमः ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधि स्मृतः ॥

यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तप, सत्य, क्षमा, दम तथा लोभ का अभाव—ये धर्म के आठ मार्ग माने गये हैं।

× × × ×

ऐश्वर्य मद मत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम् ।
अहङ्कारविमूढ़ानां विवेको नैव जायते ॥

जो ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त हैं, जो भूख से पीड़ित हैं, जो कामी हैं तथा जो अहङ्कार से मूढ़ हो रहे हैं, ऐसे मनुष्यों को विवेक नहीं होता।

× + × +

शाकाहारः सुधातुल्य उपवासः परं तपः ।
सन्तोषो मे महाभोग्यं, महादानं वराटकम् ॥

शाग का भोजन ही अमृत के समान है। उपवास ही उत्तम तप है। सन्तोष ही मुझे बहुत बड़ा भोग है। कौड़ी का दान भी मेरे जैसे व्यक्ति को बहुत बड़ा दान है।

—एक भक्त

सत्यं·शिवं·सुन्दरम्

❀ अपूर्व फल की प्राप्ति ❀

एक चोर आधी रात को किसी राजा के महलमें घुसा और राजा को रानी से यह कहते सुना कि 'मैं अपनी कन्या का विवाह उस साधु से करूँगा जो गंगा के किनारे रहता है।' चोरने सोचा कि 'यह अच्छा अवसर है। कल मैं भगवा वस्त्र पहनकर साधुओं के बीच जा बैठूंगा। सम्भव है राजकन्या का विवाह मेरे ही साथ हो जाय।' दूसरे दिन उसने ऐसा ही किया। राजा के कर्मचारी सब साधुओं से राजकन्या के साथ विवाह कर लेने की प्रार्थना करने लगे, लेकिन किसी ने स्वीकार नहीं किया, तब वे उस चोर संन्यासी के पास गये और वही प्रार्थना उन्होंने उससे भी की, तब उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कर्मचारी लौटकर राजा के पास गये और कहा कि 'महाराज! और तो कोई साधु राजकन्याके साथ विवाह करना स्वीकार नहीं करता। एक युवा संन्यासी अवश्य है, सम्भव है वह विवाह करने पर तैयार हो जाय।' राजा उसके पास स्वयं गया और राजकन्या के साथ विवाह करने के लिये अनुरोध करने लगा। राजा के स्वयं आने से चोर का हृदय एकदम बदल गया। उसने सोचा, 'अभी तो केवल संन्यासियों के कपड़े पहनने का यह परिणाम हुआ है कि इतना बड़ा राजा मुझसे मिलने के लिये स्वयं आया है। यदि मैं वास्तव में सच्चा संन्यासी बन जाऊँ तो न मालूम आगे अभी और कैसे अच्छे-अच्छे परिणाम देखने में आयें। इन विचारों का उसपर ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि उसने विवाह करना एकदम अस्वीकार कर दिया और उस दिन से वह एक अच्छा साधु बनने के प्रयत्न में लगा। उसने विवाह जन्म भर न किया और अपनी साधनाओं से एक पहुँचा हुआ संन्यासी हुआ। अच्छी बात की नकल से भी कभी कभी अनपेक्षित और अपूर्व फल की प्राप्ति होती है।

मैले दर्पण में सूर्य-किरणों का प्रतिबिम्ब नहीं दीखता, उसी प्रकार गन्दे और अस्वस्थ हृदय को, माया से आच्छादित होने के कारण, भगवान की महिमा का आभास नहीं मिलता।

—रामकृष्ण परमहंस

卐 दुःखालयं शाश्वतम् 卐

❀ श्री सुरेन्द्रबहादुर एम० ए०

यह संसार शाश्वत दुःख का घर है। जो कुछ भी स्थावर-जंगम रूप दृश्य है वह स्वप्न के समान अनित्य है। मल-मूत्र आदि की थैलियों और नाड़ियों से भरा हुआ यह शरीर केवल अल्पकाल के लिए भोग भोगने के निमित्त प्राप्त हुआ है। यह शरीर सर्वदा स्वस्थ भी नहीं रहता। नाना प्रकार के रोगों से अभिभूत रहता है। केवल रक्त और मांस का बना हुआ वह घृणास्पद शरीर श्वास-प्रश्वास के धागे पर टिका हुआ है जो पता नहीं कब टूट जायगा। फिर भी विडम्बना यह है कि मनुष्य इस शरीर के सुख के लिए कौन सा निकृष्ट कर्म करने को तत्पर नहीं रहता। यह शरीर चार अवस्थाओं से होकर गुजरता है—बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था तथा मृत्यु। युवकों को बाल्यावस्था तथा वृद्धों को युवावस्था सुखकर प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में उन अवस्थाओं में जीने वाला जीव समान रूप से दुःखी रहता है। मृत्यु के पूर्व की शेष तीनों अवस्थायें समान रूप से दुःख पूर्ण है। बाल्यावस्था में असमर्थता, आपत्तियां मूकता, तृष्णा, मूढ़ता आदि का ही प्राधान्य रहता है। बालक बड़ों के सामने दीनता, असमर्थता, निर्बलता और परतन्त्रता का अनुभव करके दुःखी होता है। युवावस्था में मनुष्य काम-वासना की पूर्ति एवं धनोपार्जन की चिंता में इतना निमज्जित रहता है कि उसे वास्तविक सुख की कल्पना भी नहीं हो सकती। वृद्धावस्था में शरीर शिथिल और निर्बल हो जाता है, इन्द्रियां अशक्त हो जाती हैं, वह सर्वदा नाना प्रकार के रोगों से आक्रांत रहने लगता है और अपने को दीन, हीन और निराश्रित अनुभव करने लगता है। इस अवस्था में तृष्णा बढ़ती ही जाती है जो उसकी शारीरिक एवं ऐन्द्रिक असमर्थता के कारण और भी सन्ताप पहुँचाने वाली बन जाती है। वास्तव में इस संसार में सुख नाम की कोई चीज नहीं है। इस जीवन में मनुष्य को कभी-कभी सुख का आभास लग जाता है जिसके पीछे वह निरन्तर दौड़ता रहता है और इसी आशा की दौड़ में वह अपनी अपरिहार्य मृत्यु की ओर से आंखें मूंदे रहता है तथा अपने को इस पृथ्वी का स्थाई निवासी माने रहता है। इसी को महाराज युधिष्ठर ने सबसे महान आश्चर्य की संज्ञा दी है—

अहन्यहनि भूतानि
गच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति
किमाश्चर्यमतः परम् ॥

अर्थात् संसार से प्रतिदिन प्राणी यमलोक में जा रहे हैं किन्तु जो बचे हुए हैं वे सर्वदा जीते रहने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा ?

यह संसार सर्वदा जलते हुए घरके समान है। इसमें सुख और शांति के लिए कहीं भी अवकाश नहीं है। संसार की इसी दुःखरूपता ने बहुत से तत्व विचारकों को निराशावादी बना दिया। जर्मनी के दार्शनिक हार्टमैन ने तो यहां तक लिखा है कि—"Not to have been born is the greatest fate and the next best is to die young."

अर्थात् सर्वोत्तम भाग्य तो यही है कि जन्म ही न हो और उसके बाद का सर्वोत्तम भाग्य यह है कि शीघ्रही मृत्यु हो जाय। लाइवनीज प्रभृति दार्शनिक ने यह स्वीकार किया है कि इस संसार में दुःख, कष्ट और अपूर्णता है जो ईश्वर कृत है। उसका कहना है कि इससे अच्छे संसार का निर्माण ईश्वर कर सकता था किन्तु उसने जान-बूझकर नहीं किया। उसका कहना है कि वैषम्य जीवन का स्वाद है। अब यदि हम मान लें कि ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की तो प्रश्न उठता है कि उसने इस संसार में विषमता की सृष्टि क्यों की ? हम देखते हैं कि कुछ लोग बहुत धनी हैं तो अन्य कुछ निर्धन हैं, कुछ लोग पूर्ण स्वस्थ हैं और कुछ लोग अत्यन्त अस्वस्थ हैं। क्या इससे ईश्वर पर पक्षपात एवं निर्दयता का आरोप नहीं लगता ? इसका उत्तर ब्रह्म-सूत्र में इस प्रकार दिया गया है—

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापे-
क्षत्वात्तथाहि दर्शयति ।

इस सूत्र पर भाष्य करते हुए स्वामी श्री शङ्कराचार्य ने लिखा है कि ईश्वर जगत का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर को कारण मानने पर उस पर विषमता तथा निर्दयता का आरोप लगता है । ईश्वर ने किसी को अत्यन्त सुख-भोगी बनाया है, जैसे देवता इत्यादि, किसी को अत्यन्त दुःख-भोक्ता बनाया है, जैसे पशु इत्यादि, किसी को अल्प सुख और अल्प दुःख का भोक्ता बनाया है, जैसे मनुष्य इत्यादि। अतः इस प्रकार की विषम सृष्टि का निर्माण करके ईश्वर साधारण मनुष्य के समान राग-द्वेष से ग्रसित प्रतीत होता है। किन्तु ईश्वर पर वैषम्य (पक्षपात) और निर्दयता का प्रसंग उठ ही नहीं सकता। क्योंकि वह तो सापेक्ष होकर (जीव के कर्मानुसार) सृष्टि की रचना

करता है। अतः सृष्टि में वैषम्य के लिए प्राणियों का धर्माधर्म ही कारण है। अर्थात् जीवों का पिछले जन्मों में किया हुआ कर्म ही विषमता का कारण है। क्योंकि ईश्वर सापेक्ष होकर (जीवों के कर्मों की अपेक्षा से) सृष्टि-रचना करता है, अतः वह पक्षपात और क्रूरता का दोषी नहीं हो सकता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार में जो कुछ भी वैषम्य है, जितने भी दुःख अथवा क्लेश हैं वे सब मानव कृत हैं, ईश्वर कृत नहीं। मनुष्य अपने कर्मों के कारण ही बार-बार जन्म लेता है, दुःख और सुख भोगता है तथा बार-बार मृत्यु को प्राप्त होता है। इस भव-चक्र का कारण मनुष्य स्वयं है। यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि मनुष्य के वर्तमान जन्म का भोग उसके पिछले जन्मों के कारण है और पिछले जन्मों का भोग उसके भी पूर्व के जन्म के कर्मों के कारण है तो आखिर उसका प्रथम जन्म भी तो कोई रहा होगा और उस जन्म के भोग का कारण क्या रहा होगा ? निश्चय ही कर्म तो नहीं रहा होगा, क्योंकि उसके प्रथम जन्म के पूर्व कोई कर्म नहीं रहा होगा। इस प्रश्न का उत्तर ब्रह्म-सूत्र में इस प्रकार दिया गया है—

अविभागात् इति चेत् न अनादित्वात्।

यह सृष्टि अनादि है अतः इस प्रकार का प्रश्न करने से प्रश्न में अनवस्था दोष आ जायगा। न्याय दर्शन में भी कहा गया है— "पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ।" तथा "आत्म-नित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ।" इन सूत्रों पर वात्स्यायन ने भाष्य लिखा है जिसका सार यह है कि मरने पर जो दूसरा जन्म होता है उसे प्रेत्य-भाव कहते हैं। जन्म-मृत्यु का यह प्रवाह अनादि है किन्तु अपवर्ग के पश्चात् इसका अन्त हो जाता है। आत्मा नित्य है। वही नाना प्रकार के शरीरों में जाता है।

मनुष्य के जन्म, भोग तथा उसकी आयु का निर्धारक उसका कर्माशय होता है। कर्मा-शय का अर्थ है कर्म की वासना। कर्माशय की जड़ क्लेश है। योगदर्शन में कहा गया है—

क्लेशमूलः कर्माशयो
दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।

अर्थात् क्लेश जिसकी जड़ है ऐसे कर्मों की वासना दृष्ट (वर्तमान) तथा अदृष्ट (भावी) जन्मों में भोगने योग्य है।' चित्त में क्लेशों के संस्कार विद्यमान रहने के कारण उनसे सकाम कर्म उत्पन्न होते हैं। उन सकाम कर्मों का फल वर्तमान तथा आने वाले जन्मों में भोगना पड़ता है। इन्हीं सकाम कर्मों के फल-भोग के संस्कार को कर्माशय कहते हैं। उस कर्माशय का फल योग दर्शन में इस प्रकार बतलाया गया है—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।

अर्थात् अविद्या आदि क्लेशों की जड़ के रहने से उस कर्माशय का फल जाति आयु और भोग होता है । भावी जाति अथवा जन्म का निर्धारण कैसे होता है ? इसका समाधान गीता में इस प्रकार किया गया है—

यं यं वापि स्मरन्भावं
त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय
सदा तद्भावभावितः ॥

हे अर्जुन, यह मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है । जीवन में बार-बार लम्बे समय तक जिस भाव का अधिक चिन्तन किया जाता है उसी का दृढ़ अभ्यास हो जाता है और जिस भाव का दृढ़ अभ्या होता है उसी भाव का अन्तकाल में अनायास ही स्मरण होता है । मृत्यु के समय जिस भाव का चिन्तन होता है, वह सात्त्वि, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का होता है। इन तीनों प्रकार के भावों का फल इस प्रकार होता है—

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु
प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोका-
नमलान्प्रतिपद्यते ॥
रजसि प्रलयं गत्वा
कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि
मूढयोनिषु जायते ॥

जब यह मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल व दिव्य लोकों को प्राप्त होता है । रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है, तथा तमोगुण की वृद्धि में मृत्यु होने पर मनुष्य कीट, पशु आदि मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है—

उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था
मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो
गच्छन्ति तामसाः ॥

'सत्त्वगुण में स्थित मनुष्य स्वर्ग आदि ऊँचे लोकों को जाते हैं, रजोगुण में स्थित मनुष्य मध्य में अर्थात् मनुष्य लोक में ही रह जाते हैं और तमोगुण में स्थित जघन्य गुण-वृत्ति वाले मनुष्य कीट, पशु आदि नीच योनियों को तथा नरकों को प्राप्त होते हैं ।'

मनुष्य के समस्त दुःखों की उत्पत्ति उसके कर्मों से होती है। कर्मों की उत्पत्ति अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश— इन पाँच क्लेशों से होती है। वास्तव में अविद्या ही सभी क्लेशों की जननी है। अनित्य में नित्य, अपवित्र में पवित्र, दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मा का ज्ञान होना अविद्या है। अविद्या की उत्पत्ति चित्त से होती है। यह चित्त प्रकृति का प्रथम परिणाम है। चित्त की उत्पत्ति का कारण है तीनों गुणों की साम्यावस्था का भंग होना। इस साम्यावस्था के भंग होने का कारण है पुरुष का उसमें प्रतिबिम्ब होना। पुरुष भ्रमवश इस प्रतिबिम्ब को ही अपना स्वरूप मान बैठता है और यहीं से सारे अनर्थों की जड़रूपा प्रकृति का सारा खेल पुरुष के निमित्त आरम्भ हो जाता है। अतः क्लेशों की आत्यंतिक निवृत्ति के लिए पुरुष और प्रकृति का भेद ज्ञान (विवेकख्याति) आवश्यक है। विवेक-ख्याति के उदय होने पर गुणों में वितृष्णा रूप पर-वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और इसके परिणाम स्वरूप पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस विवेक-ख्याति को प्राप्त करने के लिए योग ही एक मात्र उपाय है। जिस समय योगी संप्रज्ञात योग की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है उस समय विवेक-ख्याति का उदय होता है। विवेक-प्रज्ञा के प्राप्त होने पर योगी अपने को चित्त से पृथक देखता है और सारे कर्मों को गुणों का व्यापार देखता हुआ उनसे असंग बना रहता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं
यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति
मद्भावं सोऽधिगच्छति॥
गुणानेतानतीत्य
त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्वि-
मुक्तोऽमृतमश्नुते॥

'जिस समय द्रष्टा तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और तीनों गुणों से परे मुझ परमात्मा को जानता है उस समय वह मेरे स्वरूप (अर्थात् स्वरूपप्रतिष्ठा) को प्राप्त होता है। यह पुरुष शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप इन तीनों गुणों को लांघकर जन्म, मृत्यु, जरा तथा सब प्रकार के दुःखों से छूट कर अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है।'

ऊपर के विवेचनों से यह स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य के सारे दुःख-भोग उसके स्वयंकृत हैं तथा उनको दूर करने का उपाय भी उसीके हाथ में है। अतः अपना परम कल्याण चाहने वाले मनुष्य को पवित्र योगमार्ग पर चलना चाहिए तथा जीवन को सात्त्विक विचारों व कर्मों के अनुसार चलाना चाहिए। ⊙⊙

श्लोकछन्दपुष्पोपहारम्

परममहानुभावानां योगेश्वराणां परमकृपया अभ्यागतरूप आगतानां श्रीयुतानां

अनन्तश्रीविभूषितानां 'चन्द्रमोहन' इत्यक्षराण्यलंकृतानां

—कृते श्री द्वारका प्रसाद शर्मा—

निजी सचिव, परिवहन तथा श्रम विभाग सचिवालय, लखनऊ

(१)

स्वागतं ते योगमूर्ते, पावनं ते दर्शनम् ।
चरणश्रीरागमनमेव, मानसं नो हर्षणम् ॥

(२)

या दया भवता कृताद्य, मन्महे न हि भाजनम् ।
करुणयाकलितं मनो मे, कुर्वते तव भावनम् ॥

(३)

प्रतिपलं ते चिन्तनीयं, कुपथगानां तापनम् ।
केनविधिना योजनीयं, ईश्वरे जीवात्मनम् ॥

(४)

योग एव सुमृग्यमार्गः, दर्शितं वपुरात्मनम् ।
स्वात्मनः परमात्मतत्वे, विलयनं परसाधनम् ॥

(५)

प्रकुरुषे यदि योगनिष्ठ, अनुपमं परिभावनम् ।
जीवनं मे धन्यमेव, स्वीकृतं मम वाचनम् ॥

लखनऊ स्थित श्री सिद्धगुफा संस्थान के योग-प्रचार कार्यक्रम में रचयिता द्वारा पठित ।

❋ प्रेम एवम् भक्ति ❋

❀ श्री तिरखाराम

इस संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं। एक वे जो विचार प्रधान होते हैं, दूसरे भाव प्रधान और तीसरे वासना प्रधान। इन तीनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में तीन अलग-अलग मार्ग बताये हैं।

जो व्यक्ति विचार या बुद्धि प्रधान हैं उनके लिए ज्ञान मार्ग बताया है। गीता में सृष्टि और स्रष्टा (क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ) के बारे में भली भांति और स्पष्ट रूप से विवेचन किया है। वेदान्त भी इस श्रेणी के व्यक्तिओं के सभी प्रश्नों का उत्तर दे देता है और व्यक्ति को वहां पहुँचा देता है जहां उसके सभी प्रश्न समाप्त हो जाते हैं, उसके सभी प्रश्नों का उत्तर उसे मिल जाता है। विचार प्रधान प्रायः अपने विचारों में ही डूबा रहता है, उसे अपने शरीर की भी सुध-बुध नहीं रहती। ऐसे ही व्यक्तियों में एक आईन्स-टाईन भी थे। ऐसा सुना जाता है कि आईन्स-टाईन एकबार एक व्यक्ति के घर रात का खाना खाने गये। उन्होंने खाना खाया और वहीं अपने आप में खो गये। एक आध घण्टे के पश्चात् अपनी घड़ी देख लेते और फिर विचारों में डूब जाते। जब रात के दो बज गये तो उन्होंने अपनी घडी देखी और अपने साथ बैठे हुए मालिक मकान को कहा कि तुम अपने घर क्यों नहीं जाते? ऐसे व्यक्ति विचार में इतना डूब जाते हैं कि उन्हें यह ही मालूम नहीं रहता कि वे कहां बैठे हैं। उस व्यक्ति ने आईन्स-टाईन को बताया कि यह तो उसका घर है। जाना तो आपको है। वास्तव में आध्यात्मिकता का प्रारम्भ तो वहां से होता है जहां विचार समाप्त होते हैं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने इस श्रेणी के व्यक्तियों के लिए ज्ञान मार्ग बताया है जिससे इनके सभी प्रश्न समाप्त हो जायें और वे सन्तुष्ट हो जायें तथा वहां पहुँच जायं जहां विचार एवम् प्रश्न तो समाप्त हो जाते हैं, लेकिन आध्यात्मिकता प्रारम्भ होती है।

दूसरी श्रेणी के व्यक्ति वासना में जीते हैं। इनमें से कुछ वासना से लड़ते भी हैं। यानी उनका दमन करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग का मार्ग बताया है। ऐसे व्यक्ति कर्म तो करें लेकिन

फल की आकांक्षा न करें। क्या यह सत्य नहीं है कि एक व्यक्ति अगर पूर्ण मनसे कार्य करता है तो उसे अधिक सफलता मिलेगी और अगर उसका आधा मन फल की इच्छा में आसक्त है और आधे मन से वह कार्य करता है तो वह काम उतनी अच्छी तरह से नहीं हो पायेगा और न ही उसे उतनी सफलता प्राप्त होगी ? अगर यह सत्य है तो भगवान श्रीकृष्ण ने तो ऐसे व्यक्तियों को सफलता का एक मार्ग बताया है जो बिलकुल सत्य है।

इस लेख का मुख्य विषय है—तीसरी श्रेणी के व्यक्ति, जो भाव प्रधान हैं, जो हृदय प्रधान है। ऐसे व्यक्तियों के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने भक्ति मार्ग या प्रेम मार्ग बताया है। हम भाई, पिता, माता, पत्नी, शिष्य, बहिन आदि से सुनते हैं कि वे प्रेम करते हैं। आइये जरा प्रेम के अर्थ को हम समझ लें और तत्पश्चात् हम निर्णय लें कि हम वास्तव में प्रेम करते हैं या नहीं।

प्रेम का अर्थ है-बगैर किसी शर्त या स्वार्थ के देना ही देना—बस। अगर प्रेम करने वाला इसलिए प्रेम करता है कि कभी उसने कुछ लिया था या कभी वह कुछ लेगा तो यह प्रेम नहीं है। जहां बदले में कुछ लेने की भावना उठ जाती है, वहां प्रेम गायब हो जाता है, व्यापार या स्वार्थ प्रारम्भ हो जाता है। आज के व्यापारिक जीवन में हम देखते हैं कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से उसी अनुपात में प्रेम दिखाता है (करता नहीं है) जितना उसे उस व्यक्ति से स्वार्थ होता है। अगर उसकी स्वार्थ सिद्धि अधिक है तो वह अधिक प्यार दिखायेगा। आइये जरा देखें सृष्टि को रचने वाला पति-पत्नी का जोड़ा इस प्रेम की परिभाषा पर खरा उतरता है या नहीं। लगता है नहीं - क्योंकि पति पत्नी से कुछ ज्यादा लाभ प्राप्त करना चाहता है और देना कम चाहता है और इसी तरह पत्नी भी।

प्रभु तो केवल शुद्ध प्रेम से ही प्राप्त होते हैं। यह कहना भी गलत न होगा कि प्रभु तो स्वयं शुद्ध प्रेम है। क्या आपको यह महसूस नहीं होता कि हम श्री गुरुदेव भगवान से बार-बार इसलिए मिलते हैं कि उनसे हमें स्वार्थ-रहित बिना किसी हेतु के प्रेम मिलता है। अब जरा यह भी देखना होगा कि क्या हम श्री सद्गुरु देव भगवान को स्वार्थ रहित प्रेम करते हैं। अगर हम प्रभु जी के पास किसी स्वार्थ-सिद्धि हेतु आते है तो यह शुद्ध प्रेम नहीं है। प्रभु ऐसे प्रेम पर नहीं रीझते।

प्रेम की दूसरी शर्त है भय-रहित होना। अगर हम भगवान से इसलिए प्रेम करते हैं कि वह हमें किसी प्रकार का दण्ड दे सकते हैं और अगर हम प्रेम दिखायेंगे तो प्रभु हमें दण्ड नहीं देंगे तो यह भी प्रेम नहीं है। प्रेम तो भय और

स्वार्थ रहित होता है। जब प्रेम शुद्ध होता है तब तो यह अपने प्रभु को खींच लेने में समर्थ है। प्रेम रूपी कच्चे धागे से तो मीरा और सूरदास ने भगवान श्रीकृष्ण को बांध रखा था। मीरा के सम्बन्ध में एक बात याद आती है। मीरा प्रेम मग्न होकर खूब नाचती थी, गाती थी। हम मीरा का बाहरी भेष एवं नाचना गाना अपनाने लगे हैं। हम भी भगवान की तस्वीर के आगे नाचते हैं गाते हैं, शायद यह सोचकर कि जिस तरह से मीरा को नाचने से भगवान की प्राप्ति हो गई थी, उस तरह से हमें भी प्राप्ति हो जाये। लेकिन वास्तविकता कुछ और है। मीरा इसलिए नहीं नाचती कि नाचने से उसे भगवान मिल जाते हैं बल्कि क्योंकि उसे भगवान मिल गये हैं और इतनी प्रेम मग्न हो गई है कि अपनी सुध बुध भूल गई हैं और नाच उठी हैं। प्रेम में इतनी डूब गई हैं कि उन्हें तो यह भी नहीं मालूम कि वो नाच रही हैं। उसका साधन भी प्रेम है, साध्य भी प्रेम है और वह भी प्रेम है क्योंकि वह अपने आपको भूल गई हैं। उसे प्रेम में प्रेम दीख रहा है, प्रेम को प्रेम दीख रहा है, प्रेम से प्रेम दीख रहा है और प्रेम ही प्रेम दीख रहा है। यही भक्ति है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गोपियों को परा-भक्ति प्रदान की थी। उद्धव जी गोपियों को ज्ञान सिखाना चाहते हैं। लेकिन गोपियों पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। क्यों? इसका उत्तर हमें मिल जावेगा। अगर हम यह जान लें कि पराभक्ति का अर्थ क्या है और यह कब प्राप्त होती है। हम सांसारिक जीवों को तरह तरह के सन्देह रहा करते हैं जो गोपियों में विद्यमान नहीं थे। सन्देह शब्द बना ही देह से है। जब तक देह भाव हमारे संग रहेगा तब तक हमें सन्देह रहेगा ही। जब सन्देह पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो हमें खोज करने की इच्छा होती है। इसी खोज को ध्यान या Meditation का प्रारम्भ कहा जा सकता है। मान लो हमें सन्देह है कि एक मेज के नीचे सांप है तो हम मेज के नीचे जाकर खोज करेंगे और जानकारी प्राप्त कर लेंगे। खोज से जानकारी प्राप्त होती है, जानकारी से विश्वास उत्पन्न होता है। जिस पर (साधन, व्यक्ति, भगवान) विश्वास हो जाता है उससे सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिससे सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, उससे प्रेम हो जाता है। उदाहरण के तौर पर हमें अपने बेटे, पिता, माता आदि से इसलिए प्रेम हो जाता है कि हमारा उनसे सम्बन्ध होता है। जिससे शुद्ध प्रेम होगा उसका स्मरण एवम् चिन्तन स्वतः ही होता रहेगा और निरन्तर होता रहेगा। यही ध्यान की अवस्था है। ध्यान की परिपक्व अवस्था ही समाधि है। समाधि से परा-

पूर्व प्रकाशित से आगे —

卐 निजानुभूतियाँ 卐

❀ श्री महेन्द्रनारायणसिंह बरैनी, बछवा

मरणासन्न पुत्र निरोग

यह घटना गत २६ दिसम्बर १९६८ ई० की है। आगामी ३ जनवरी १९६९ ई० को एक रात्रि के लिए आनन्दकन्द श्री गुरुदेव जी ने मिरजापुर नगर में निवास करने की स्वीकृति प्रदान की थी। २६ दिसम्बर को प्रातः में आदरणीय गुरु-भाई श्री श्यामसुन्दर जी तथा श्री भाई कृष्णानन्द जी को साथ लेकर मिरजापुर नगर में प्रभुजी के निवासादि की व्यवस्था देखने गया। वहां के परम आदरणीय गुरु भाई श्री लखनलाल जी वैद्य द्वारा निश्चित गुरुदेव के निवास करने के कई स्थानों को श्री वैद्य जी के साथ जाकर देखने में काफी समय लग गया। घर बरैनी लौटते समय रात्रि हो गई। सोमवार का दिन था। अपने गांव से दो मील दूर बजहा ग्राम के ग्राम प्रधान आदरणीय गुरु भाई श्री भुलई-सिंह जी के यहाँ हो रहे मासिक सत्संग में जाना अति आवश्यक था। मैं जल्दी में था। पांच मिनट अपनी बैठक में सुस्ता कर हम

[पिछले पृष्ठ का शेष]

भक्ति प्राप्त होती है और पराभक्ति से प्रेम का स्त्रोत फूटता है, जो सबके लिए बहता है और सबके लिए समरूप से बहता है। यह नहीं कि एक के लिए (जो अपना है) प्रेम अधिक हो और दूसरे के लिए (जो अपना नहीं है) प्रेम कम हो। प्रेम रूपी नदियां और झरने इसलिए बहते हैं कि वह सबको समान रूप से जल दे सकें, और वे देते ही देते हैं, लेने की लेश मात्र भी अभिलाषा नहीं है। यही शुद्ध प्रेम है, यही पराभक्ति है। इस अवस्था में भगवान प्रेम है, साधन भी प्रेम है और साधक भी प्रेम ही है। तथा साधक कृत कृत्य हो जाता है और उसमें से सबके लिए कृत कृत्य करने वाला शुद्ध प्रेम बह निकलता है। कोई भी उसमें डूबना चाहे डूब जाये। यही भक्ति है और यह ही प्रेम है। यही पूर्ण समर्पण एवं ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान से समाधि लाभ प्राप्त होता है, जिसे प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का एक मात्र उद्देश्य है।

लोग वजहां जाने को तैयार हुए। उसी समय बरैनी निवासी भाई श्री बृजनाथ लाल जी ने आकर बड़े ही कारुणित स्वर में बताया कि मेरा दो वर्षीय पुत्र मरणासन्न है। बच्चे को चिकित्सार्थ कछवा ले गया, वहां के ख्याति-प्राप्त वैद्य (वयोवृद्ध) श्री धरणीधर जी शर्मा वैद्य शास्त्री ने बच्चे की हालत देखकर कहा कि इसमें हाथ लगाना अपने ऊपर अपयश लेना है। पर बहुत ही प्रार्थना करने पर वैद्य जी ने औषधि दी, लेकिन कोई लाभ नहीं है। हालत बिगड़ती जा रही है। मुझसे उन्होंने आग्रह पूर्वक कहा कि भाई जी गुफा की थोड़ी सी रज आप अपने हाथ से दे दीजिये। शायद प्रभु की कृपा हो जाये। भाई जी की बात सुन कर मुझे भयवश कपकपी सी आ गई, एक तो लड़के की हालत खराब, दूसरे आज तक मैंने अपने हाथ से कभी किसी को रज का प्रसाद नहीं दिया था। भाई बृजनाथ लाल जी की मनः स्थिति देखकर अस्वीकार करने का साहस भी नहीं हो रहा था। मैं बड़े ही अस-मंजस में पड़ा। सहसा मुझे गुरु-चरणों का ध्यान आया। श्री गुरुदेव जी का अभयमुद्रा में उठा दाहिना हाथ मुझ पर प्रकाश की धारा सी छोड़ता दिखाई पड़ा। मैंने भाई जी से कहा कि शीशो में श्री सिद्धगुफा की पवित्र रज रखी हुई है। मुझे अपने हाथ से रज देने को श्री गुरुदेव जी की आज्ञा नहीं है आप स्वतः ले लीजिये, अपने बच्चे को प्रसाद स्वरूप दीजिये, सम्भव है कुछ लाभ हो जावे। वजहां सत्संग में जाते समय रास्ते में मैंने आदरणीय गुरु-भाई श्री कृष्णानन्द जी से पूछा कि बच्चे की हालत कैसी है (भाई जी आयुर्वेदिक चिकित्सक हैं) उन्होंने भी बताया कि हालत ठीक नहीं है। मुझे कुछ भय एवं चिन्ता हुई कि यदि लाभ न हुआ तो रज के प्रति श्री भाई जी क्या सोचेंगे? मन में चिन्ता तो थी ही। प्रातः उठकर मैं पहले श्री भाई बृजनाथ लाल जी के घर गया। मिलने पर उन्होंने बताया कि बच्चे की हालत सुधार पर है लगातार दो दिन तक प्रातः उठकर पहले मैं भाई जी के यहां बच्चे का समाचार पूछने जाता था। परम सद्गुरु के कृपा प्रसाद स्व-रूप बच्चा स्वस्थ हो गया।

भयंकर उदर शूल शान्त

मीरजापुर जिलान्तर्गत कछवा बाजार निवासी सुप्रसिद्ध होम्योपैथ चिकित्सक एवं आदरणीय गुरु भाई श्री डा० कन्हैयालाल जी गुप्त के यहां प्रत्येक मास के दूसरे शनिवार को मासिक सत्संग समारोह रात्रि में होता है। भजन कीर्तन के अतिरिक्त गुरुदेव के परम पूज्य स्वरूप का श्रृंगार सराहनीय होता है। गत फरवरी १९६९ ई० का द्वितीय शनिवार १५ फरवरी को पड़ा। सौभाग्य से उसी दिन महाशिव रात्रि का पर्व था। कई गुरु-भाई सत्संग में सम्मिलित थे। इन्हीं में वजहां ग्राम

के निवासी आदरणीय गुरु भाई श्री प्रकाश-नारायणसिंह जी भी थे। उनके पेटमें सूर्यास्त से ही पीड़ा हो रही थी पर श्री गुरुदेव जी के चरणों में अगाध श्रद्धा होने के कारण भाईजी सत्संग छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। अपने पेट दर्द की शान्ति के लिए भाई जी ने कई बार औषधि सेवन किया। पर पीड़ा में उत्तरोत्तर वृद्धि होकर अन्त में खाट पर उठाकर ले जाने की सम्भावना प्रतीत होने लगी उनका बार-बार कराहना सुनकर मेरे मन में कुछ दया भावना आयी, रुग्ण होते हुए भी भाई जी के भक्तिभाव को देखकर श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों में मैंने मूक प्रार्थना की, दयानिधि का शुभ संकेत पा करके, मैंने उनसे निवेदन किया कि भाई जी आप दो मिनट सर्वांग आसन कर लें शायद लाभ हो जाये। उन्होंने बताया कि मुझे सर्वांग आसन करना नहीं आता। मैंने आदरणीय गुरु भाई श्री नर नारायणसिंह जी से अनुरोध किया, कृपया आप इन्हें सर्वांग आसन बता देवें। भाई श्री भोलासिंह जी ने (गुरुदेव जी प्यार से इन्हें भोला भंडारी कहकर पुकारते हैं) तत्काल अपनी सहायता से उन्हें सर्वांग आसन करा दिया। श्री भाई प्रकाशनारायण जी मुश्किल से १० सैकेण्ड सर्वांग आसन में खड़े रहे होंगे, इतने अल्प समय में उनका भयंकर उदर शूल समाप्त हो गया। मैंने प्रार्थना की कि भाई जो दो तीन मिनट सर्वांग आसन कर लेना चाहिये था पर उन्होंने कहा कि पैर ऊपर उठाते समय ही मेरा सारी पीड़ा समाप्त हो गयी थी। रात्रि १२ बजे तक भाई जी सत्संग समारोह में सम्मिलित रहकर कीर्तन आरती स्तुति आदि गान करते रहे एवं ऐसे प्रसन्न चित्त थे कि मानो आज की सारी गुरु कृपा को वे ही आत्मसात कर लिए हैं। परम भक्त वत्सल गुरुदेव जी की अनेकों ऐसी ही कृपा लीलायें इस क्षेत्र पर हो रही हैं। गुरु कृपा से उनका किसी अगले लेख में वर्णन करने का प्रयास करूंगा। — क्रमशः

कहा गरब करत है ?

जा तन को कहा गरब करत है,
खोला ज्यों गल जावै रे ।
जैसे बरतन बनों कांच को,
ठपक लगै बिनसावै रे ॥
झूठ कपट अरु छलबल करि कै,
खोटे कर्म कमावै रे । —चरणदास

❋ श्री गुरुदेव जी का- ❋

लखनऊ में भव्य योग-प्रचार

आज भारत तथा विदेशों में योग-सिद्धान्त एवं योगानुभूति का प्रसार योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा भास्कर भूषित रश्मियों की भांति फैल चुका है। नगरों, गांवों, जंगलों में रहने वाले अगणित साधक श्री गुरु-प्रदत्त शक्तिपात से इस महा कलिकाल मे कई घण्टों ध्यान-समाधि एवं विशेष यौगिक क्रियायें करते दिखाई पड़ते हैं। किसी में राजयोग का, किसी में हठयोग का तथा अन्यान्य में नाना प्रकार की योग-साधनायें स्वतः श्री गुरु-कृपा शक्ति से प्रस्फुटित होती हैं।

अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में दिसम्बर ११ से २० तक बड़े ही धूमधाम से योग-प्रचार कार्यक्रम श्री गुरुदेव भगवान ने सम्पन्न किये हैं। वहां के कार्यक्रम की विशेषता, आकर्षण, अद्भुत अलौकिक वातावरण का तथा हजारों लखनऊ वासियों ने अनुभव किया। जिसका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत लेख में करने का प्रयास किया जा रहा है।

लखनऊ में पदार्पण

लखनऊ वासियों का परम भाग्योदय दिवस ११ दिसम्बर ८० का प्रातः काल था। स्टेशन पर हजारों नर-नारी, बाल-वृद्ध अपने हाथों में पुष्प-हार लिए उत्सुकता एवं सश्रद्ध निर्निमेष दृष्टि से बार-बार लाइन की तरफ देखते थे। उस ट्रेन की प्रतीक्षा अब दुःसह हो उठी थी। तभी अवध एक्सप्रेस दूर से आती दिखाई दी। एक कौतूहल मिश्रित तरंग जन-जन में प्रवाहित हो उठा। गाड़ी प्लेटफार्म पर आ लगी। लोग कुछ निश्चित-अनिश्चित से जय-जयकार मनाते हुए दौड़ पड़े। श्री गुरुदेव भगवान की जय। महाप्रभु श्री रामलाल की जय। स्थिर हुये ट्रेन के एक कम्पार्टमेण्ट से उतर कर सद्गुरु भगवान प्लेट फार्म पर अभी खड़े हो पाये भी न थे कि, मालाओं की ढेर से उनका मुख चन्द्र पूरा ढक गया। लोग श्रद्धा-विह्वल हो बार-बार उनके चरणों में प्रणाम करते—कोई पीछे हटता कोई आगे बढ़कर माल्यार्पण करता। श्री प्रभुजी पुष्पाच्छादित शिवलिंग की भांति शोभायमान थे।

बारम्बार वे मालाओं को गले से उतार कर जन-जन को बाँटते थे परन्तु नवागन्तुक यह देखकर चकित रह जाता था कि वे पूर्ववत् पुनः मालाओं की ढ़ेर में छिप जाते हैं।

कार्यक्रम के प्रमुख संयोजन कर्ता भाई मोहनलाल जी तथा ओमप्रकाश पालीवाल भगवान श्री को एक कार में बैठाकर कारों, टैम्पों, स्कूटरों तथा मोटर साइकिलों के लम्बे काफिले के साथ सत्संग-स्थल पहुँचे। यहां भाई मोहनलाल ने अपने परिवार, परिजन तथा सत्संगी भाइयों सहित बड़े ही भावोद्रेक में श्री गुरुदेव भगवान को भव्य मंच पर आसीन करके आरती, पूजन किया। श्री गुरुदेव जी ने लखनऊ वासियों के श्रद्धा-भाव एवं प्रेमकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए बताया कि जहां इस प्रकार की श्रद्धा लोगों के हृदय में निवास करती है वहां सहज ही भगवान की अहेतुकी कृपायें होती हैं। अनेक अद्‌भुत कृपाओं के प्रसंग घटित होने लगते हैं। ऐसे श्रद्धामय वातावरण में सहज शक्तिपात के भाजन लोग बन जाया करते हैं। जिसके फलःस्वरूप साधारण मानव मुनि व ऋषि बन जाया करते हैं। लोक-परलोक के सभी कार्य सहज ही सध जाते हैं।

श्री सिद्धगुफा योग-शिक्षण केन्द्र लखनऊ

श्री गुरु शक्ति से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। साधारण व्यक्ति भी असाधारणत्व दिखलाता है। श्री गुरु-कृपा प्राप्त व्यक्ति सभी कुछ कर सकता है। ऐसा ही पुरुषार्थ हमारे मोहनलाल भाई नें कर दिखलाया है। इन लोगों ने श्री गुरु प्रदत्त शक्ति को जन-जन में फैला देने की अन्तः प्रेरणा श्री सिद्धगुफा सवाई धाम से प्राप्त की है। जिसे इन्होने अल्पकाल में ही अपने पुरुषार्थ से कार्य-रूप में परिणत कर दिखलाया। एक मनोरम आश्रम "श्री सिद्धगुफा योग शिक्षण केन्द्र" के नाम से स्थापित किया है। जिसमें आनन्दकन्द योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी का भव्य स्वरूप तथा उनके जीवन सम्बन्धी चारु-चित्र-पट मन्दिर में स्थापित किया है। उस बड़े हाल में योग सम्बन्धी उद्‌बोधक सूत्रों तथा योगेश्वरों के चारु चित्रों की छटा निहारते ही बनती है। आश्रम में प्रवेश करते ही वहां की स्वच्छता, पवित्रता सभी को प्रथम दृष्ट्या सम्मोहित कर लेती है। अनेक लखनऊ वासियों ने हमें बतलाया कि कैसे श्री महाप्रभु जी के स्वरूप दर्शन मात्र से उन्हें लौकिक व मानसिक उत्थान प्राप्त हुआ।

नैतिक सत्संग

श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमल पड़ने से यह नवीन आश्रम जीवन्त हो उठा। चहल पहल में भी एक परमोत्सव भाव व्याप्त था। प्रातः ५ बजे लोग नित्य कर्मों से निवृत्त

होकर मन्दिर में एकत्र होते। कीर्तन की ध्वनि स्वर्गीय वातावरण को निर्मित कर देती। लोग ध्यान, भाव समाधि में निमग्न कई प्रकार की क्रियायें करते दीखते—कोई रोता हुआ—कोई मन्द-मन्द मुस्कान बिखेरता हुआ कोई तीव्रता से कम्पित होता—कोई भस्त्रिका प्राणायाम के प्रभाव से अभिभूत हुआ दिखलायी पड़ता। ७ बजे श्री गुरुदेव जी मन्दिर में आकर सामूहिक आरती श्री महाप्रभु जी की उतारते। जिसके तुरन्त पश्चात् दो अध्याय श्री गीता जी का पाठ कराते थे। श्रीमुख से निःसृत श्लोक सुनकर जब लोग पुनरावृत्ति करते तो, वह ध्वनि आकाश तल को गुणायमान कर देती। श्री गीता पाठ के बाद सभी एक घण्टा ध्यानाभ्यास करते। तत्पश्चात् लोग कायिक कष्टों के निवारणार्थ श्री गुरुदेव जी से प्रार्थना करते थे। श्री प्रभुजी किसी को पुष्प प्रसाद, किसी का विशेष आसनादि तथा किसी को विशेष औषधि तथा नेती, जीवन तत्त्व, दुग्ध पान का आदेश देते थे। योग-क्रियाओं को ब्रह्मचारीगण बड़े ही लगन से लोगों को सिखलाते थे। परिणाम स्वरूप अल्पकाल में ही लोगों को आशातीत लाभ हुआ। जिससे निरन्तर भारी भीड़ आश्रम में दिन रात एकत्र रहती थी। योग-जिज्ञासु विद्वत् जन श्री प्रभुजी से अपने संदेहों का निवारण अपराह्न २ बजे से ३ बजे तक करते थे। फिर ४ बजे से ६ बजे संध्या तक संगीत विशारद श्री उमा जी द्वारा महिला-सत्संग नियोजित होता था। अपने कोकिल कण्ठ से जब वे श्री प्रभुनाम-संकीर्तन तथा मनोहर प्रभु-चरित्रों का वर्णन पद्यात्मक रचनाओं में हारमोनियम के साथ ध्वनित करती थीं तो बहुत से स्त्री-पुरुष भावातिरेक तथा हर्षातिरेक से आंसू बहाते दिखलाई पड़ते थे। उनके भाव-विह्वल कण्ठ से सत्व का संचार साधारण हृदयों में दिखलाई पड़ता था। सवाई संकीर्तन मण्डल भी इसी बीच वहाँ दर्शनार्थ जाकर जोर-शोर से कीर्तन की धूम मचायी।

प्रवचन सार

रात्रि में श्री गुरुदेव भगवान का योग-सिद्धान्तों पर सहज एवं सरल ढंग से प्रवचन हुआ करता था। योग क्या है? मानव-जीवन में योग की अपरिहार्यता, मोक्ष का स्वरूप, साधन योग द्वारा सिद्धयोग की उपलब्धि इत्यादि विषयों को सरल वाणी में श्री प्रभुजी ने लखनऊ वासियों को समझाया। साधारण व्यक्ति भी कैसे सिद्धानुशासन में रहकर अपना दृष्ट संवेदनीय प्रारब्ध बना लेता है। जिसके परिणाम से वह बौद्धेय धर्मों से मुक्त होकर द्रष्टावस्था को प्राप्त हो जाता है। दृष्ट-संवेदनीय संस्कार कैसे कोई तैयार कर सकता है इसके उपाय बतलाते हुए भगवान श्रीने कहा—१. तीव्र स्वाध्याय २. तीव्र तप ३. ईश्वर प्रणिधान ४. सिद्ध कृपा, यही चार उपाय हैं। इन उपायों को अनेक उदाहरणों से समझाते

हुए भगवान श्री ने कहा कि दृष्ट संवेदनीय प्रारब्ध हो जाने पर मनुष्य केवली भाव में स्थित होकर मुक्ति लाभ कर लेता है। एक दिन श्री प्रभु ने अपने तीन बच्चों से भी योग प्रवचन करवाया। गोरखपुर के डा० विजय-सिंह ने सिद्धयोग की विशेषता पर प्रकाश डाला, श्री ओमप्रकाश त्यागी ने साधन योग पर प्रकाश डाला तथा ब्रह्मचारी वीरेन्द्रस्वरूप ने कर्म बन्धन तथा मोक्षके ऊपर प्रकाश डाला। अन्त में श्री गुरूदेव भगवान ने कई प्रवचनों में ॐ अनादि सिद्ध काय निर्वाण करके जीवों का उद्धार करने वाले श्री महाप्रभु जी की कृपाओं का उल्लेख किया।

मानिटरी हाल में प्रवचन

सचिवालय के अधिकारी वर्गों तथा हिन्दी सभा मण्डल के विशेष आग्रह पर श्री गुरुदेव भगवान ने १ घण्टा समय दिया। वहां योगकी परिभाषा निरूपित करते हुए श्री गुरुदेव जी ने कहा कि—चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन निरोध होना ही योग है। जिससे आत्मा अपने को बुद्धि धर्मों से अलग कर लेती है। यही सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात समाधि की विशेषताओं पर भी प्रकाश डालते हुए कैसे प्राणी योग के अधिकारी होते हैं बताया। अन्त में भगवान श्री ने उद्बोधित करते हुए कहा-मात्र योगानुसरण से ही सुख-शान्ति एवं समन्वयता मानव जीवन में आ सकती है। सारी उपासनायें अन्ततोगत्वा योग द्वारा ही सफलीभूत होता है। अतः तुम सभी हमारी बातों को सुनकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के आदेश पर चलो—

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

जो ऐसा करेगा वह अवश्य ही श्री प्रभुजीकी कृपा से सफल मनोरथ होगा।

दीक्षा

श्री गुरुदेव भगवान के अनुपम योगैश्वर्य से प्रभावित होकर सैकड़ों व्यक्तियों ने योग-मार्ग को अपनाया तथा योग-दीक्षा प्राप्त किया। कई विधायक तथा सचिवालय के अधिकारी श्रीचरणों में दीक्षा प्राप्त किया।

❀ लेखकों से निवेदन ❀

सिद्धयोग के सभी विद्वान लेखकों और सुकवियों से निवेदन है कि सिद्धयोग के १४ वें वर्ष का प्रवेशांक विशेशांक सदा की भांति आगामी चैत्र शुक्ला नवमी सम्वत् २०३८ को प्रकाशित होगा। अतः निवेदन है कि सभी सुलेखक एवं सुकवि बन्धु अपने-अपने सुलेख और रचनायें अधिक से अधिक फरवरी के अन्त तक भेज देने की कृपा करें।

विनीत:
श्री देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य'
संयुक्त सम्पादक

❋ मयि बुद्धि निवेशय ❋

❀ ब्रह्मचारी श्री दासलाल

योग-दर्शन में भगवान पतञ्जलि ने समाधि प्राप्ति के उपायों को बतलाते हुए कहा है। 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि लाभ प्राप्त होता है। ईश्वर प्राणिधान के तत्व को समझना काफी जटिल है। महाभारत युद्ध के समय मोह-ग्रसित होने पर अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र से "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" इस प्रकार कहकर अर्जुन ने भगवान से श्रेय मार्ग के तत्व को बतलाने की प्रार्थना की थी। इस पर भगवान ने उन्हें आत्मा के अमरत्व का उपदेश किया। तत्पश्चात् निष्काम कर्म रहस्य, ध्यान योग विधि, प्राणायाम, यम-नियम आदि तत्वों को बतलाया। इससे अगले अध्यायों में भगवान ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया। अर्जुन ने भगवान की सारी बातें स्वीकार करलीं परन्तु भगवान के विश्व रूप दर्शन की इच्छा प्रकट की। भगवान ने उन्हें अपना विराट स्वरूप दिखलाया। फिर भगवान ने अर्जुन को निर्गुण और सगुण उपासकों में सगुण उपासक को श्रेष्ठ बतलाया है। क्योंकि "अव्यक्ता हि गतिर्दुःखम् ।" अर्थात् देहाभिमानियों से अव्यक्त विषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है, क्योंकि जब तक शरीर में अभिमान रहता है तब तक निर्गुण ब्रह्म में स्थिति पाना कठिन है।

परमात्मा के सगुण स्वरूप की उपासना का सरलतम उपाय बतलाते हुए भगवान ने अर्जुन से कहा—मय्येव मन आधत्स्व, "मयि बुद्धि निवेशय। अर्थात् हे अर्जुन ! तू अपने मन और बुद्धि को मुझे समर्पित कर दो इससे तुम "निवसिस्यसि मय्येव" अर्थात् तुम मेरे में ही निवास करोगे, मुझे ही प्राप्त होगे। अठारहवें अध्याय में फिर ऐसी ही बात अर्जुन से कही है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवंष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसिमे ॥

इस श्लोक के द्वारा भी भगवान ने ईश्वर प्रणिधान की आज्ञा दी है। इससे भी अधिक रहस्य की बात और बतलाई है "सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकम् शरणं व्रज।" अर्थात् संपूर्ण धर्मों को तथा धर्म के साधनों को त्याग कर तू केवल मेरी शरण में आ जा, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा। जिन्होंने अपने मन और बुद्धि को ईश्वरार्पित कर दिया है उनके

विषय में भगवान की प्रतिज्ञा है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्यु पासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योग क्षेमं वहाम्यहम् ॥

अर्थात् अनन्य भाव से मुझ में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते हुए मुझे भजते हैं उन नित्य चिन्तन-रमण करने वाले योगियों का योग क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। "अप्राप्तस्य प्रापणं योगः, प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः।" अप्राप्त की प्राप्ति योग है तथा प्राप्त का रक्षण क्षेम है। इसलिए भगवान की आज्ञा है कि—मच्चित्तः सततं भव।' अर्थात् निरन्तर मेरे में चित्त वाला हो इससे संसार सागर से अनायास ही तर जाओगे और यदि अहंकारवश मेरी बात नहीं मानोगे तो नष्ट हो जाओगे। अर्थात् परमार्थ से भ्रष्ट हो जाओगे। ईश्वर ने मनुष्य को कर्म करने के लिए स्वतंत्र छोड़ रखा है। जैसा कोई कर्म करेगा वैसा ही कर्म-विपाक उसे मिलेगा। 'नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभु।' अर्थात् परमात्मा किसी के अच्छे व बुरे कर्म को ग्रहण नहीं करता। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने अर्जुन को सारी बातें बतला दीं और अन्त में कहा 'विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।' अर्थात् जो कुछ ज्ञानमय तत्व मैंने कहा है उसको अच्छी प्रकार से विचार-विमर्श करके जैसा करना चाहता है वैसा कर, जैसी तेरी इच्छा हो वैसा ही कर। जिन साधकों का मन, बुद्धि, अहंकार अपने इष्ट में निरंतर लीन रहता है उनके सारे क्रिया कर्म इष्ट की प्रेरणा से ही होगा।

इस प्रकार के बहुत से भक्त और योगियों के उदाहरण हमारे सामने हैं जिन्होंने अपने मन, बुद्धि, अहंकार को पूर्णतया इष्टमें विलीन कर दिया। योगिराज कृपालानन्द जी के बारे में हम सबने सुन पढ़ रखा है। वह श्री महाप्रभुजी के साथ ब्रह्मपुरी के जंगलों में रहा करते थे, उनकी बुद्धि और अहंकार नित्य भगवान सदाशिव में लीन रहती थी जिससे पत्र स्वरूप भगवान सदाशिव की सारी शक्तियां उसके साथ रहा करती थीं। उनके अन्य चमत्कारिक चरित्र अनेकों हैं जो वह समय पर कर दिया करते थे। इस प्रकार यदि साधक का मन अपने इष्ट के मन में बुद्धि, बुद्धि में तथा अहंकार अहंकार में मिल जाये तो वह तद्रूप हो जाता है। वह उसी प्रकार उसमें विलीन हो जाता है जिस प्रकार सिन्धु में बिंदु। इसलिए साधक को चाहिए कि वह अपने मन बुद्धि को पूर्णतया इष्ट में समर्पित करते हुए अनन्य-चिन्तन करता रहे। भगवान श्रीकृष्णचंद्र का भी यही आदेश है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

पूर्व प्रकाशित से आगे—

❋ को नहिं जानत है जग में- ❋

❋ ज्योतिर्विद् श्री शिवनाथ मेहरोत्रा

कर्म को मार्ग धरे कर्मठ जन कर्म सहारे ते आगे बढ़े हैं।
ज्ञान को पन्थ सँवारि सुज्ञानी ब्रह्म स्वयं बनि बोल रहे हैं॥
योग सहारे ते योगी यती करि चित्त निरोध सुब्रह्म बने हैं।
भक्ति सहारे तुम्हारी सदा हम अङ्क तुम्हारे हैं डोल रहे हैं॥

कोटि-कोटि गो गोपीजन बन गोप सन्त गुरु रूप निहारो।
कौन सो संकट मोर गरीब को जो तुमसों नहिं जात है टारो॥
वेगि हरौ गुरुदेव महाप्रभु जो कछु संकट होय हमारो।
को नहिं जानत है जग में प्रभु देत सबै सुख लेत सम्हारो॥२१॥

सूर्य हो आप सुनेत्र प्रकाश हो आत्मस्वरूप हो शक्ति के पुञ्जा।
प्रेम हो आप सुभक्ति प्रदायक शक्ति असीम हो कृष्णनिकुञ्जा॥
पुण्य हो आप सहायक विश्व के नाद तुम्हारा ही विश्व में गुञ्जा।
हो गुरुदेव अनादि अनन्त सुमार्ग प्रदायक कर्म को भुञ्जा॥

रोम-रोम रम रहे सचर रोम-रोम ब्रह्माण्डन धारो।
कौन सो संकट मोर गरीब को जो तुमसों नहिं जात है टारो॥
वेगि हरौ गुरुदेव महाप्रभु जो कछु संकट होय हमारो।
को नहिं जानत है जग में प्रभु देत सबै सुख लेत सम्हारो॥२२॥

सरस्वती भी सहज थास से गुणगान गान नहीं करि पावैं।
शेष सहसमुख तें स्तुतिवाचन गाकर तुष्टि नहीं भरि पावैं॥

नारद, तुम्बुरु, देव, असुर, शिव हरि विधि तोहिं न व्यक्त करावें ।
ताहि कि हौं करि गान सकौं गुण श्याम जु आप नियुक्त करावें ॥

वृन्दावन बसि प्रेम बहायो सुरस अमीरस धार उभारो ।
कौन सो संकट मोर गरीब को जो तुमसों नहिं जात है टारो ॥
बेगि हरौ गुरुदेव महाप्रभु जो कछु संकट होय हमारो ।
को नहिं जानत है जग में प्रभु देत सबै सुख लेत सम्हारो ॥२३॥

हो गुरु तत्त्व द्विधा प्रकटे कहुँ योगी बने कहुँ प्रेम प्रकाशे ।
काशी करी दुनियां ते निराली या मथुरा को जसु कीन्ह विकाशे ॥
बन नटराज द्विधा नाचे तन भुभुत रमाये जटा गंग लासे ।
गंग को धार पदन ते बहाए सुनृत्य किए नित रहसि सुरासे ॥

राधारूप प्रेम की धारा ऊर्ध्व प्रेम को पन्थ प्रसारो ।
कौन सो संकट मोर गरीब को जो तुम सौं नहिं जात है टारो ॥
बेगि हरौ गुरुदेव महाप्रभु जो कछु संकट होय हमारो ।
को नहि जानत है जग में प्रभु देत सबै सुख लेत सम्हारो ।२४॥

योगेश्वर योगीश्वर बनकर रूप अनन्त सुकन्त बनायो ।
रास विलास सदा करते, दुख में सुख, सुख में दुख बनि छायो ॥
तीन गुणाश्रित विश्व बनाइ रमे सबमें सब मोहि चरायो ।
है करतूति सबै तुम्हरी, करतूति हमारि को नाम धरायो ॥

श्यामकिशोर मधुर मूरति प्रिय प्रियतम साथ अनन्त विहारो ।
कौन सो संकट मोर गरीब को जो तुमसों नहिं जात है टारो ॥
बेगि हरौ गुरुदेव महाप्रभु जो कछु संकट होय हमारो ।
को नहिं जानत है जग में प्रभु देत सबै सुख लेत सम्हारो ॥२५।

श्री गुरुदेव जी के आगामी

❀ योग-प्रचार कार्य-क्रम ❀

दिनांक १०-२-८१ को दिल्ली के लिए प्रस्थान

दिनांक ११-२-८१ से १२-२-८१ तक — दिल्ली आश्रम निवास
पता— श्री सिद्धगुफा शिक्षण संस्थान, गुरुद्वारा के सामने, आर. के. पुरम्
नई दिल्ली-२२

दिनांक १३-२-८१ से १७-२-८१ तक — योग-प्रचार कार्यक्रम (विचाराधीन)

दिनांक १८-२-८१ से २०-२-८१ तक — योग-प्रचार कार्यक्रम अमृतसर
पता—बहिन श्री द्रौपदीदेवी जी सत्संग वाली
नया आश्रम कुब्बीबेरी, गली नेमसिंह
किला भंगिया, अमृतसर

दिनांक २०-२-८१ से २१-२-८१ तक — निजी कार्यक्रम

दिनांक २२-२-८१ को छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस द्वारा आगरा से नागपुर के लिए प्रस्थान

दिनांक २३-२-८१ से २—३-८१ तक — योग-प्रचार कार्यक्रम नागपुर
पता— शैलेन्द्रकुमार शिवलिहा, I. O. F. S.
डिप्टी डायरेक्टर, आर्डनेन्स फैक्ट्रीज
स्टाफ कालेज, अम्बाझारी
नागपुर-४४००२१

दिनांक २—३-८१ को भोपाल के लिए प्रस्थान

दिनांक ३—३—८१ को भोपाल निवास

दिनांक ४—३-८१ से ७—३-८१ तक — योग-प्रचार कार्यक्रम रायसेन
पता—द्वारा आर. के. सिंह सिसौदिया
जिला शिक्षा अधिकारी रायसेन म. प्र.

मूल्य वृद्धि की सूचना—

❁ सिद्धयोग के ग्राहकों की सेवा में ❁

'सिद्धयोग' के प्रिय ग्राहकों की सेवा में हमें सूचित करने को विवश और बाध्य होना पड़ रहा है कि 'सिद्धयोग' में काम आने वाले प्रिंटिंग पेपर के तथा मुद्रण सम्बन्धी श्रम तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण 'सिद्धयोग' का वार्षिक मल्य आगामीवर्ष से जो चैत्र शुक्ला रामनवमी के पर्व से प्रारम्भ होता रहा है— १५ रुपये के स्थान पर १८ रुपया वार्षिक कर देने का निर्णय लिया गया है। अन्य पत्र-पत्रिकाओं के वार्षिक मूल्य की अपेक्षा फिरभी यह मूल्य न्यूनतम है। आशा है 'सिद्धयोग' के पाठक हमारी इस सूचना को ध्यान में रखकर आगामी वर्ष के लिए अपना-अपना वार्षिक मूल्य १८ अठारह रुपया हमें मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करेंगे।

भवदीय :

श्रीनाथ शर्मा ब्रह्मचारी

व्यवस्थापक—सिद्धयोग— कार्यालय

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र--सवाई, आगरा

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

❀ पूर्व जन्म के संस्कारों के अभाव में— ❀

यदि पूर्वजन्म के शुभ संस्कार न हों तो शास्त्र और गुरु का उपदेश ठीक-ठीक हृदयंगम नहीं होता। पाण्डित्य या अन्य विषय में कोई सम्भवतः खूब उन्नत हो सकता है, समाज में उच्च पद और मान-सम्भ्रम प्राप्त कर सकता है, और करोड़पति हो सकता है, व्यवसाय-वाणिज्य में खूब मन देकर उसका प्रसार कर सकता है पर धर्म या सूक्ष्म परमार्थ तत्व के विषय में शायद वह बिल्कुल ही अज्ञ या बालकवत् रह सकता है, साधारण विषय भी सरलता से नहीं समझ सकता। फिर भी यदि वह सत्यनिष्ठ, विश्वासी, सरल और हृदयवान हुआ तो ईश्वर की कृपा से उसे साधु-संग और सद्गुरु का आश्रय मिल जाता है। उसके फलस्वरूप वह धर्म के सूक्ष्मतत्त्व की भी उपलब्धि करने में समर्थ होता है।

—श्रुतिसार

卐 卐 卐

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा-१